वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

SW- 10

Scope of Social Work

(समाज कार्य के क्षेत्र)

अनुक्रमणिका

इकाई	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई **1**	समाज कार्य का अर्थ	1-5
इकाई 2	समाज कार्य के प्रकार्य	6-11
इकाई 3	भारत में समाज कार्य का ऐतिहासिक विकास	12-16
इकाई 4	समाज कार्य : एक व्यवसाय	17-23
इकाई 5	समाज कार्य व्यवसाय के समक्ष चुनौतियाँ	24-34
इकाई 6	समाज कार्य के क्षेत्र: युवा कल्याण एवं वृद्ध कल्याण	35- 42
इकाई 7	समाज कार्य के क्षेत्र : बाल ,महिला एवं परिवार कल्याण	43-53
इकाई 8	समाज कार्य के क्षेत्र : श्रम कल्याण	54-67
इकाई 9	सामाजिक सुरक्षा	68-77
इकाई 10	सामाजिक प्रतिरक्षा	78-84
इकाई 11	ग्रामीण एवं नगरीय विकास	85-98
इकाई 12	चिकित्सीय एवं मनःचिकित्सीय समाज कार्य	99-107
इकाई 13	अनुसूचित जाति एवं जनजाति एवं पिछडे वर्ग का कल्याण	108-121

इकाई-1

समाज कार्य का अर्थ

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य (Objective)

1.1 प्रस्तावना (Preface)

1.2 भूमिका (Introduction)

1.3 समाज कार्य की परिभाषाएं (Definitions of Social Work)

1.4 सारांश (summary)

1.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions for Practice)

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

1.0 उद्देश्य (Objective)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

1.समाज कार्य में उसकी परिभाषाओं की भूमिका से अवगत हो सकेंगे |

२. समाज कार्य की परिभाषाओं का वर्णन कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना (Preface)

समाज कार्य एक नवीन विषय है जिसका विकास मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने एवं समस्याओं का विशिष्ट ढंग से समाधान करने के उद्देश्य से हुआ। यद्यपि समाज कार्य करना कोई नवीन कार्य नहीं है किन्तु व्यवसायिक ढंग से लोगों की सहायता करने के इस उपागम का विकास अपेक्षाकृत आधुनिक समय में हुआ है। इसलिये इस उपागम से परिचित होने के लिये विभिन्न विद्वानों के द्वारा अनेक परिभाषाएं दी गयी हैं जिनसे समाज कार्य विषय से परिचित होने में सहायता मिलती है।

1.2 भूमिका (Introduction)

समाज कार्य की परिभाषाओं से समाज कार्य विषय पर प्रकाश पडता है। इन परिभाषाओं के माध्यम से ही समाज कार्य व्यवसाय के अन्तर्गत प्रदान की जाने वाली सेवाओं के क्षेत्र का भी पता चलता है। समाज कार्य की परिभाषाएं नवीन कार्यकर्ताओं के लिये मार्ग दर्शन का भी कार्य करती हैं कि उन्हें किस प्रकार से व्यक्ति एवं समाज के लिये सेवायें प्रदान करनी चाहिये।

1.3 समाज कार्य की परिभाषाएं (Definitions of Social Work)

समाज कार्य के विकास के दौरान बहुत लम्बे समय तक इस बात पर ही ज्यादा जोर दिया जाता रहा है कि समाज कार्य का ध्येय मात्र वर्तमान समय में विद्यमान समस्या का समाधान और उसके परिवेश व संदर्भ से है , किन्तु अब इसके साथ ही यह भी समान रूप से माना जाने लगा है कि समाज कार्य का ध्येय भावी इच्छित परिवर्तन भी है। इच्छित भावी परिवर्तन से समन्वय की बात जनतांत्रिक मूल्यों की स्वीकृति और इस पर आधारित समाज कार्य की स्थापना के कारण महत्वपूर्ण हो गयी है।

समाज कार्य परिभाषा को लेकर विभिन्न देशों तथा समुदाय के विद्धानों की अलग-अलग धारणाएं रही हैं। किसी ने इसे व्यवसायिक सेवा के रूप में देखा तो किसी ने इसे परोपकार आदि के रूप में। इसका कारण उस राष्ट्र अथवा समुदाय की परिस्थितियाँ, पम्पराएँ, संस्कृति, मूल्य आदि हैं, जिन्होंने उसके दृष्टिकोण को निर्धारित किया है।

समाज कार्य की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ:--

विटमर (1942) के मतानुसार

"समाज कार्य का प्रमुख कार्य व्यक्तियों की उन कठिनाइयों को दूर करने में सहायता देना है जो एक संगठित समूह की सेवाओं के प्रयोग से या उनके एक संगठित समूह के सदस्य के रूप में कार्य सम्पादन से सम्बन्धित है।''

फिंक के शब्दों में-

''समाज कार्य अकेले अथवा समूहों में व्यक्तियों को वर्तमान अथवा भावी (भविष्य की)ऐसी सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक बाधाओं, जो समाज में पूर्ण अथवा प्रभावपूर्ण सहभागिता को रोकती है अथवा रोक सकती है, के विरूद्ध सहायता प्रदान करने हेतु प्रचित सेवाओं का प्रावधान है।''

एलिस चेनी (1936) के अनुसार,-

''समाज कार्य में वह सब ऐच्छिक प्रयास सम्मिलित है जिनका सम्बन्ध सामाजक सम्बन्धों से है और जो वैज्ञानिक ज्ञान और वैज्ञानिक प्रणालियों का प्रयोग करते हैं।''

सुशील चन्द्र के मतानुसार -

''समाज कार्य जीवन के मानदण्डों को उन्नत बनाने तथा समाज के सामाजिक विकास की किसी स्थिति में व्यक्ति, परिवार तथा समूह के सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक कल्याण हेतु सामाजिक नीति के कार्यान्वयन में सार्वजनिक अथवा निजी प्रयास द्वारा की गई गतिशील क्रिया है।''

फ्रीडलैण्डर के अनुसार-

''समाज कार्य वैज्ञानिक ज्ञान एवं मानवीय सम्बन्धों में निपुणता पर आधारित एक व्यवसायिक सेवा है जो व्यक्तियों की अकेले अथवा समूहों में सामाजिक एवं वैयक्तिक सन्तोष एवं स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सहायता करती है।''

बोएम (1959) के अनुसार-

''समाज कार्य व्यक्तियों की व्यक्तिगत एवं सामाजिक परिस्थिति में सामाजिक कार्यात्मकता को बढ़ाने के लिये ऐसी प्रक्रियाओं का प्रयोग करता है जिनका सम्बन्ध मनुष्य और उनके पर्यावरण के बीच परस्पर सम्बन्धी क्रियाओं

से है।"इन क्रियाओं को तीन कार्यों में विभाजित किया जा सकता हैः विकृत योग्यता का पुर्नस्थापन, वैयक्तिक एवं सामाजिक साधनों की उपलब्धि एवं सामाजिक कार्य वैकल्प का निरोध।

स्ट्रूप (1960) के अनुसार-

''समाज कार्य ऐसी कला है जिसमें विभिन्न साधनों का प्रयोग वैयक्तिक, सामूहिक एवं सामुदायिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये किया जाता है और इसके लिये ऐसी वैधानिक प्रणाली का प्रयोग किया जाता है जिसमें लोगों की सहायता की जाती है कि वे स्वयं अपनी सहायता कर सकें।''

इण्डियन कान्फ्रेन्स आफ सोशल वर्क के अनुसार-

''समाज कार्य मानवतावादी दर्शन, वैधानिक ज्ञान एवं प्राविधिक निपुणताओं पर आधारित व्यक्तियों अथवा समूहों एवं समुदाय को एक सुखी एवं सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करने में सहायता प्रदान करने हेतु एक कल्याणकारी क्रिया है।''

कोनोप्का (1958) के अनुसार-

''समाज कार्य एक अस्तित्व है जिसके तीन स्पष्ट रूप से भिन्न परन्तु परस्पर सम्बन्धित भाग हैं , सामाजिक सेवाओं का एक जाल, सावधानी के साथ विकसित प्रणालियों एवं प्रक्रियायें तथा सामाजिक नीति जो सामाजिक संस्थाओं और व्यक्तियों द्वारा प्रकट होती हैं। यह तीनों मनुष्यों के विषय में एक मत, उनके परस्पर सम्बन्धों और उनके नैतिक कर्तव्यों पर आधारित हैं।

मिर्जा रफीउद्दीन अहमद के मतानुसार -

''समाज कार्य मानवतावादी दर्शन, वैज्ञानिक ज्ञान एवं प्रविधिक निपुणताओं का प्रयोग करते हुए प्रभावपूर्ण सामाजिक क्रिया के मार्ग में आने वाली समस्याओं से ग्रस्त लोगों की व्यक्तियों, समूहों अथवा समुदायों के रूप में सहायता प्रदान करने की एक व्यवसायिक क्रिया है जो उन्हें आत्म सहायता करने के योग्य बनाती है।''

क्लार्क के अनुसार-

"समाज कार्य व्यवसायिक सेवा का एक रूप है, जिसका आधार ज्ञान एवं निपुणताओं का ऐसा मिश्रण है, जिसका कुछ भाग समाज कार्य का विशेष भाग है और कुछ नहीं, जो सामाजिक पर्यावरण में आश्यकताओं की सन्तुष्टि करने में व्यक्ति की सहायता करने का प्रयास करता है कि जहाँ तक हो सके उन बाधाओं को दूर किया जा सके जो लोगों को सर्वोत्तम की प्राप्ति के वे योग्य हैं से रोकती है"।

यू0एन0ओ0 (यूनाईटेड नेशन्स ऑर्गनाइजेशन) द्वारा दी गई परिभाषा के अनुसार, -

"समाज कार्य पीड़ितों को व्यैक्तिक रूप से दान देने, आर्थिक व भौतिक सहायता के माध्यम से योगदान पर आधारित है। यह भेदभाव रहित तथा समान रूप से विश्व व मानवता के कल्याण पर केन्द्रित है तथा विशिष्टता के साथ अनिवार्यतः किसी संगठन द्वारा दी जाती है।"

फ्रीडलैण्डर के मतानुसार--

"समाज कार्य एक व्यवसायिक सेवा है जो वैज्ञानिक ज्ञान एवं निपुणताओं (मानव संबंधों की) पर आधारित है। यह व्यक्तियों की अकेले या समूह में सहायता करता है, ताकि वे सामाजिक एवं व्यक्तिगत सन्तुष्टि एवं स्वतंत्रता प्राप्त कर सकें।"

बी0जी0 खेर (1947) के अनुसार-

"समाज कार्य का उद्देश्य जैसा कि सामान्य रूप से समझा जाता है सामाजिक अन्याय को दूर करना, विपत्तियों का हटाना, दुखों को रोकना, समाज के कमजोर सदस्यों और उसके परिवारों के पुनर्वास में सहायता देना और संक्षिप्त में पांच दानव आकार बुराइयों -

1. भौतिक आवश्यकता,
2. रोग,
3. अज्ञानता,
4. मलीनता,
5. निष्क्रियता या अनुपयुक्तता - से संघर्ष करना है।

समाज कार्य एक व्यावसायिक सेवा है जो वैज्ञानिक ज्ञान, समाज कार्य अभ्यास एवं मानव सम्बन्धों में निपुणता पर आधारित है और जो व्यक्तियों को व्यक्तिगत रूप से या समूह के माध्यम से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में और उन सामाजिक बाधाओं को दूर करने में दी जाती है जो उन्हे अपने कर्तव्य पालन से रोकती है।

इण्डियन कान्फ्रेन्स ऑफ सोशल वर्क (1957)-

इण्डियन कान्फ्रेन्स ऑफ सोशल वर्क के अनुसार, ''समाज कार्य एक कल्याणकारी क्रिया हैं जो मानवता-सेवी (लोक-उपकारी) दर्शन, वैज्ञानिक ज्ञान, प्राविधिक निपुणताओं पर आधारित है, जिसका उद्देश्य व्यक्तियों, समूहों या समुदाय की सहायता करना है, जिससे वे एक सुखी एवं सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें।''

इस परिभाषा के दो पक्ष है- एक, समाज कार्य को कल्याणकारी क्रिया माना है जो वैज्ञानिक ज्ञान और कार्यकर्ता की सहायता करने की प्राविधिक निपुणताओं पर आधारित है। दूसरे, इन कल्याणकारी क्रियाओं का उद्देश्य व्यक्तियों, समूहों या समुदाय के सदस्यों को सुखी और सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करने में सहायता प्रदान करना है।

इस प्रकार समाज कार्य वैज्ञानिक ज्ञान, प्राविधिक निपुणताओं एवं मानवतावादी दर्शन का प्रयोग करते हुये मनोसामाजिक समस्याओं से ग्रस्त लोगों को वैयक्तिक, सामूहिक एवं सामुदायिक स्तर पर सहायता प्रदान करने की एक क्रिया है जो उनकी इन समस्याओं को पहचानने, उन पर ध्यान केन्द्रित करने, उनके कारणों को जानने तथा उनका स्वतः समाधान करने की क्षमता को विकसित करती है तथा सामाजिक व्यवस्था की गड़बड़ियों को दूर करती हुई, इसमें वांछित परिवर्तन लाती है ताकि व्यक्ति की सामाजिक क्रिया प्रभावपूर्ण हो सके, उसका समायोजन संतोषजनक हो सके और उसे सुख शान्ति का अनुभव हो सके। साथ ही सामाजिक संघर्षों को कम करते हुये एकीकरण को प्रोत्साहित किया जा सके।

1.4 सारांश (Summary)

समाज कार्य उद्देश्यपरक सेवाएं प्रदान करने का कार्य करता है। इसका लक्ष्य व्यक्ति की अन्तर्वैयक्तिक समस्याओं जैसे पारिवारिक समस्याएं, दाम्पत्य जीवन की समस्याएं, आपसी सम्बन्धों की समस्याएं, उपचारात्मक सेवायें तथा सुधारात्मक सेवायें प्रदान करके व्यक्ति और समाज की समस्याओं को कम करना तथा उनकी प्रकार्यात्मकता में वृद्धि करके सामाजिक संस्थाओं के परिचालन को बेहतर बनाना है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति की कार्य करने की क्षमता में हो रही गिरावट की रोकथाम करना, उसकी पुनर्स्थापना करना, व्यक्ति को समायोजित करना आदि प्रमुख

कार्य हैं| इसके अतिरिक्त संसाधनों का प्रबन्ध करना तथा पुनर्वासात्मक सेवाएं प्रदान करना भी महत्वपूर्ण है। यह शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी मनोसामाजिक समस्याओं के लिए कार्य करता है।

1.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions for Practice)

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. समाज कार्य को परिभाषित कीजिये।
2. हेलेन क्लर्क द्वारा दी गई के आशय को स्पष्ट कीजिये |

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

१. समाज कार्य की परिभाषाएं समाज कार्य को समझने में कहां तक सहायक हैं? उल्लेख कीजिये।

२. समाज कार्य की परिभाषाएं समाज कार्य को दिशा एवं उसके कार्यान्वयन का निर्धारण करती है ? उक्त कथन को स्पष्ट कीजिये |

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

1. अहमद रफीउद्दीन मिर्जा, समाज कार्य दर्शन एवं प्रणालियां, शाइनिंग प्रेस लखनऊ, 2004.
2. सिंह, सुरेन्द्र, पी.डी. मिश्र, समाज कार्यः इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियां, न्यू राॅयल बुक कम्पनी लखनऊ, 2010.
3. मदन जी0 आर., अमित अग्रवाल, परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन दिल्ली, 2012.
4. जयसवाल, सीताराम, शिक्षा में निर्देशन और परामर्श अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा, 2011.
5. सूदन, सिंह कृपाल समाज कार्यः अभ्यास एवं सिद्धान्त न्यू रायल बुक पब्लिकेशन लखनऊ.

इकाई-2

समाज कार्य के प्रकार्य

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य (Objective)

2.1 प्रस्तावना (Preface)

2.2 भूमिका (Introduction)

2.3 समाज कार्य के प्रकार्य (Functions of Social Work)

2.4 सारांश (Summary)

2.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions for Practice)

2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

2.0 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

1. समाज कार्य के प्रकार्यों के बारे में जान सकेंगे।
2. समाज कार्य,समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति में कहां तक प्रकार्यात्मक है, यह समझ सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना (Preface)

आधुनिक समाज विभिन्न प्रकार की समस्याओं से ग्रसित होता जा रहा है। एक तरफ जहां व्यक्ति तनाव एवं अवसाद जैसी मानसिक समस्याओं का सामना कर रहा है| वहीं समाज के विकास में भी विभिन्न प्रकार की बाधायें उपस्थित हैं। ऐसी परिस्थितियों में समाज कार्य एक ऐसे व्यवसाय के रूप में विकसित हुआ है, जो अपनी विशिष्ट कार्य प्रणालियों के माध्यम से न केवल व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्याओं को दूर करने में सक्षम है| बल्कि विभिन्न प्रकार की सामाजिक सेवाओं का भी आयोजन कर के सामाजिक समस्याओं को दूर करने तथा लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने का कार्य कर रहा है।

2.2 भूमिका (Introduction)

समाज कार्य के अन्तर्गत व्यक्ति की समस्याओं का समाधान करने का दायित्व ग्रहण किया जाता है। समाज कार्यकर्ता ,समाज कार्य व्यवसाय के अंतर्निहित ज्ञान एवं कुशलताओं के आधार पर समाजिक समस्याओं का बहुआयामी समाधान करता है| जिसमें मनोसामाजिक एवं मनोशारीरिक समस्याओं के समाधान के साथ-साथ सामाजिक विकास की आवश्यकताओं की भी पूर्ति की जाती है।

2.3 समाज कार्य के प्रकार्य (Functions of Social Work)

समाज कार्य एक सहायतामूलक व्यावसायिक सेवा है। इसका सम्बन्ध ऐसे व्यक्तियों की सहायता करने से है जिन्हें सहायता की आवश्यकता है| जिससे वे अपनी समस्याओं का हल स्वयं कर सके एवं स्वयं सक्षम बन सके। समाज कार्य मानव समाज से सम्बन्धित है और वह समाज की समस्याओं के समाधान को कम करने का प्रयास करता है। समाज कार्य मानव समाज की समस्याओं के समाधान के लिए विभिन्न सामाजिक एवं व्यवहारिक विज्ञानों से ज्ञान, सिद्धान्त एवं कुशलताओं को ग्रहण करता है एवं उनका उपयोग अपने सेवार्थियों की विभिन्न प्रकार की समस्याओं के निदान एवं समाधान में करता है। समाज कार्य की विषय-वस्तु समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, मानवशास्त्र, जीव विज्ञान, मनोरोग विज्ञान एवं चिकित्सा विज्ञान सभी से लिया गया है। ये सभी विद्या उपागम मानव व्यवहार एवं मनोविज्ञान को समझने में सहायक हैं।

इस प्रकार सामाजिक कार्यकर्ता, समाज कार्य व्यवसाय में अन्तर्निहित ज्ञान एवं कुशलताओं के आधार पर समाजिक समस्याओं का बहुआयामी समाधान करता है। प्रमुख रूप से समाज कार्य के द्वारा चार क्षेत्रों में सेवाये प्रदान की जाती हैं जिनके अपने विशिष्ट सामाजिक स्रोत भी हैं जैसे शारीरिक सम्बन्धी समस्याओं के लिए उपचारात्मक प्रकार्य, समाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र की समस्याओं के लिए सुधारात्मक प्रकार्य, मनोवैज्ञानिक समस्याओं के क्षेत्र में पुर्नवासन से सम्बन्धित सेवाएं तथा विकासात्मक क्षेत्र में कार्य करने के लिए निरोधात्मक सेवाएं प्रदान की जाती है। इस प्रकार से इन सभी क्षेत्रों को समाज कार्य के प्रमुख प्रकार्य के रूप मे देखा जा सकता है-

1. सुधारात्मक प्रकार्य

समाज कार्य व्यवसाय में व्यक्ति और उसके पर्यावरण के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता है। यदि व्यक्ति का अपने पर्यावरण के साथ अन्तःक्रियात्मक संबंध ठीक है तो वह समायोजन का अनुभव करेगा अन्यथा उसे अपनी सामाजिक भूमिकाओं के निर्वाह में समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। इसलिए समाज कार्य के द्वारा विचलनपूर्ण व्यवहार करने वाले व्यक्त्यिों के व्यवहार में आवश्यक सुधार लाकर उनकी अन्तःक्रिया करने की क्षमता में वृद्धि की जाती है और उन्हें समाज के अनुसार व्यवहार करने के लायक बनाया जाता है।

समाज कार्य के द्वारा सुधारात्मक कार्य प्रमुखतः अपराधी सुधार संस्थाओं में किया जाता है जहां पर वैयक्तिक सामाजिक कार्यकर्ताओं के द्वारा मुख्य रूप से सेवाएं प्रदान की जाती हैं। यहां पर कार्यकर्ता का दायित्व संवासियों में संतोषजनक समायोजन उत्पन्न करने के साथ-साथ उन्हें पुनर्वास के लिए तैयार करना भी है।

वस्तुतः सुधार वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा आधुनिक समाज कानून तोडने वाले व्यक्तियों की मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाने तथा उनकी जीवन-शैली को समाजिक नियमों के अनुरूप ढालने का प्रयत्न करता है। सुधारात्मक समाज कार्य के अंतर्गत व्यक्ति के विचलित व्यवहार एवं दृष्टिकोण में ऐसी सहायक प्रक्रिया द्वारा परिवर्तन लाने का कार्य किया जाता है जो उसके व्यक्तिगत समायोजन में सहायक सिद्ध होता हो। इसके माध्यम से अपराधी व्यक्ति के पर्यावरण एवं परिस्थितियों में परिवर्तन तथा संशोधन द्वारा तथा अनेक प्रकार के निरोधात्मक एवं सुधारात्मक साधनों की उपलब्ध करवाकर उनमें परिवर्तन लाते हैं| सुधारात्मक समाज कार्य उन व्यक्तियों को सामाजिक आचरणों के पालन करने में सहायता देती है जो विचलनपूर्ण व्यवहार करने लगते हैं। इसमें सामाजिक कार्यकर्ता अन्य सुधार कार्यकर्ताओं, मनोवैज्ञानिकों एवं मनोचिकित्सकों के साथ मिलकर कार्य करता है। कार्यकर्ता के द्वारा विचलनपूर्ण व्यवहार करने वाले व्यक्तियों के बारे में जांच-पडताल करके उनके सामाजिक-आर्थिक व पारिवारिक

पृष्ठभूमि के बारे में ऐसी जांच रिर्पोट प्रस्तुत की जाती है जिससे अपराधी सुधार संस्थाओं के अधिकारी किसी सुधारवादी निर्णय को ले सकें।

2.निरोधात्मक प्रकार्य

निरोधात्मक प्रकार्य से आशय उन परिस्थितियों का निषेध करना है जो व्यक्ति के जीवन में सामाजिक, आर्थिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायें उत्पन्न करती हैं या कर सकती हैं। निरोधात्मक प्रकार्यों के अन्तर्गत सामाजिक कार्यकर्ताओं के द्वारा व्यक्ति के व्यक्तिगत एवं सामुदायिक जीवन में हस्तक्षेप करके उन्हें ऐसी परिस्थितियों के प्रति सावधान एवं जागरूक किया जाता है जो उनके जीवन में विभिन्न प्रकार की समस्यायें उत्पन्न करती हैं या कर सकती हैं। इसलिए सामाजिक कार्यकर्ताओं के द्वारा समुदायों में निरोधात्मक सेवाओं का संचालन किया जाता है जैसे लोगों को स्वास्थ्य रक्षा हेतु साफ-सफाई एवं स्वच्छता की जानकारी देना, टीकाकरण कार्यक्रमों को समुदाय में लागू करवाना, शिशु स्वास्थ्य रक्षा कार्यक्रमों का लाभ दिलवाना आदि।

3.विकासात्मक प्रकार्य

विकासात्मक प्रकार्यों के अन्तर्गत सामाजिक कार्यकर्ता समुदायों के लिए विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों को बनाने में उनकी मदद करते हैं। वे समुदाय को अपनी विकासात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संसाधनों की व्यवस्था करने और आवश्यकता एवं संसाधनों में उचित सामंजस्य स्थापित करने में मदद करते हैं। इन प्रकार्यों में प्रमुखतः विकास एवं रोजगार से सम्बन्धित कार्यक्रमों का निर्माण करना एवं उनका संचालन करना सामेकित है जैसे युवाओं व महिलाओं के लिए रोजगारपरक व्यावसायिक प्रशिक्षण के कार्यक्रमों का आयोजन करना, समुदाय आधारित पेयजल कार्यक्रम बनाना, ऊर्जा के प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग सम्बन्धी कार्य आदि। सामाजिक कार्यकर्ता विकासात्मक कार्यक्रमों के निर्माण में भी विभिन्न संगठनों के लिए सलाहकारी सेवायें प्रदान करते हैं एवं उनके अन्तर्गत विभिन्न पदों पर कार्य भी करते हैं जैसे योजना आयोग आदि|

उपरोक्त प्रकार्यों के अतिरिक्त समाज कार्य द्वारा बहुआयामी प्रकार्यों को भी सम्पन्न किया जाता है जिनमें कल्याणकारी एवं उपचारात्मक प्रकृति के कार्य हैं जो निम्नवत् हैं-

4.उपचारात्मक प्रकार्य

इन कार्यों के अन्तर्गत समस्या की प्रकृति के अनुसार चिकित्सीय सेवाओं, स्वास्थ्य सेवाओं, मनोचिकित्सकीय एवं मानसिक आरोग्य से सम्बन्धित सेवाओं, अपंग एवं निरोग व्यक्तियों के लिये सेवाओं तथा पुनरस्थापना सम्बन्धी सेवाओं को सम्मिलित किया जा सकता है। जैसे चिकित्सा सम्बन्धी कल्याणकारी कार्य तथा विद्यालय सम्बन्धित समाज कार्य आदि।

5.चिकित्सा सम्बन्धी कल्याण कार्य

बहुधा शारीरिक और मानसिक रोगों के कारणों में सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारण भी सम्मिलित होते हैं। रोग के कारण भी अनेक समायोजन सम्बन्धी समस्याएं उत्पन्न हो जाती है और व्यक्ति अपनी सामाजिक भूमिकाओं का सम्पादन संतोषजनक रूप से नहीं कर पाता। फिर चिकित्सालय में भी उसके समायोजन की समस्या होती है। समाज कार्यकर्ता इन समस्याओं को सुलझाने के लिये मुख्य रूप से वैयक्तिक कार्य प्रणाली का प्रायोग करता है।

6.विद्यालय सम्बन्धी समाज कार्य

इस क्षेत्र में विद्यार्थियों की विद्यालयों में समायोजन सम्बन्धी समस्याएं आती हैं भगोडापन एवं बाल अपराध की समस्याएं इस क्षेत्र से सम्बन्धित हैं। इन समस्याओं को सुलझाने के लिये वैयक्तिक सेवा कार्य एवं सामूहिक सेवा कार्य का प्रयोग होता है।

समाज कार्य के प्रकार्यों में अन्य कल्याणकारी कार्य भी सम्मिलित किये जाते हैं जो निम्नवत् हैं-

7.पिछडी जाति एवं आदिम जाति कल्याण सम्बन्धी कार्य

भारत में अनेक पिछडी और आदिम जातियां रहती हैं और इनमें से अधिकतर अविकसित हैं। इनकी समस्याओं को सुलझाने के लिये समाज कार्य अपनी तीनों प्रमुख प्रणालियों का प्रयोग करता है।

शिशु कल्याण

इस क्षेत्र में अनाथ, निराश्रित और बाल अपराधी बच्चों की समस्याएं आती हैं। अनाथ या निराश्रित बच्चों के लिये या तो किसी संस्था का प्रबन्ध करना होता है या फिर उनके लिये दत्तक ग्रहण या प्रतिपोषक सेवा की सुविधाएं उपलब्ध की जाती हैं। सामाजिक कार्यकर्ता बच्चों और उनके संरक्षकों की योग्यताओं और प्रेरणाओं का अध्ययन करता है और अपने ज्ञान और निपुणताओं का प्रयोग समस्या के समाधान के लिये करता है मुख्य रूप से इस क्षेत्र में वैयक्तिक समाज कार्य प्रणाली का प्रयोग होता है।

युवा कल्याण

इस क्षेत्र में युवाओं के मनोरंजन एवं उनके समायोजन सम्बन्धी समस्याएं आती हैं| युवाओं की शक्तियों का रचनात्मक प्रकटन उनके व्यक्तित्व के विकास के लिये अत्यावश्यक है। इसके लिये मुख्य रूप से सामाजिक सामूहिक कार्य का प्रयोग किया जाता है और युवाओं को ऐसी सुविधाएं उपलब्ध की जाती हैं जिनसे उन्हें सामूहिक जीवन में रचनात्मक रूप से आत्म प्रकटन का अवसर मिल सके।

महिला कल्याण

जैसा कि हम जानते हैं हमारे देश में स्त्रियों की दशा अभी तक संतोषजनक नहीं है। बहुधा उनका आर्थिक एवं सामाजिक रूप से शोषण किया जाता है। इसके अतिरिक्त अनेक परिस्थितियों में पति या पिता की मृत्यु के कारण वे अभावग्रस्त तथा बेसहारा हो जाति हैं । इन सब समस्याओं का सुलझाने के लिये अनेक संस्थाएं समाज कार्य सेवाओं का प्रयोग करती है। महिलाओं के पुनर्वास के लिये आवश्यक है कि उनका समायोजन संतोषजनक हो इस क्षेत्र में वैयक्तिक समाज कार्य और सामूहिक समाज कार्य दोनों ही प्रणालियों का प्रयोग होता है।

वृद्धावस्था कल्याण

वृद्धावस्था में मनुष्य को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पडता है| भारत में तेजी से बढते औद्योगीकरण और नगरीकरण की गति के कारण संयुक्त परिवार की पम्परा टूटती जा रही है और इससे वृद्ध व्यक्तियों की समस्याएं बढती जा रही हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिये मुख्य रूप से वैयक्तिक समाज कार्य और सामूहिक समाज कार्य का प्रयोग किया जाता है।

परिवार कल्याण

समाज कार्य में परिवार रुपी संस्था को बहुत महत्व दिया जाता है। परिवार एक ऐसी संस्था है जो मनुष्य की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। प्राचीन काल में परिवार एक ऐसी संस्था थी जिसे कल्याणकारी कार्यों का मुख्य साधन कहा जा सकता था। अब यह संस्था स्वयं कल्याण को प्रत्याशी होती जा रही है। अर्थात वर्तमान समय में परिवार रुपी संस्था अपने सदस्यों के कल्याण सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति में जब असफल होती है, तो इसके लिए उसे समाज की अन्य संस्थाओं का सहारा लेना पडता है। दूसरे शब्दों में यह एक चिकित्सक से एक रोगी बनने की दिशा में बढ़ रही है। बहुधा सामाजिक परिस्थिति के परिवर्तन के कारण परिवार के सामाजिक सम्बन्धों में प्रतिकूलता आ जाती है और परिवार के सदस्यों में समायोजन का अभाव उत्पन्न हो जाता है। समायोजन की समस्या पति-पत्नी या माता-पिता और संतान या भाई-बहन या परिवार के अन्य सदस्यों के बीच उत्पन्न हो सकती है। इस क्षेत्र में भी समाज कार्य प्रमुख रूप से वैयक्तिक समाज कार्य प्रणाली का प्रयोग करता है।

श्रम कल्याण

इस क्षेत्र में श्रमिकों की समायोजन सम्बन्धी समस्याएं आती हैं बहुधा वैयक्तिक असंतुलन के कारण श्रमिक कारखानों में समायोजन प्राप्त नहीं कर पाते और इस कारण संघर्ष और तनाव उत्पन्न होता है। श्रमिकों की वैयक्तिक समायोजन सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने के लिये बहुधा वैयक्तिक समाज कार्य प्रणाली का प्रयोग किया जाता है परन्तु सामूहिक सेवा कार्य का भी विस्तृत प्रयोग होता है।

ग्रामीण कल्याण

इनमें विशेष प्रकार से ग्रामीण साधनों के विकास और ग्रामीण व्यक्तियों को संगठित करने का प्रयास किया जाता है। समाज कार्य इसमें मुख्य रूप से सामुदायिक संगठन प्रणाली का प्रयोग करता है।

शोधन कार्य

इसका सम्बन्ध अपराधियों एवं बाल अपराधियों के सुधार या चिकित्सा से है। इस क्षेत्र में प्रमुख प्रणाली तो वैयक्तिक समाज कार्य है परन्तु सामूहिक समाज कार्य एवं सामुदायिक संगठन का भी पर्याप्त प्रयोग किया जाता है।

2.4 सारांश (Summary)

सामाजिक कार्यकर्ता व्यक्ति की इच्छाओं को महत्व देता है और उसकी समस्याओं का समाधान उसी की इच्छा के अनुसार करता है। समाज कार्य में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मनुष्यों की आवश्यकताओं की संतुष्टि उनकी अभिरूचि एवं इच्छा के अनुसार ही हो। इसके लिये समाज कार्य विकासात्मक, उपचारात्मक, निरोधात्मक एवं सुधारात्मक प्रकार्यों को सम्पन्न करता है।

2.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions for Practice)

1. समाज कार्य के कौन-कौन से प्रकार्य हैं? वर्णन कीजिए।
2. समाज कार्य में विकासात्मक प्रकार्यों के क्षेत्र में प्रदान की जाने वाली सेवाओं का उल्लेख कीजिये।

2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

1. अहमद रफीउद्दीन मिर्जा, समाज कार्य दर्शन एवं प्रणालियां, शाइनिंग प्रेस लखनऊ, 2004
2. सिंह, सुरेन्द्र, पी.डी. मिश्र, समाज कार्य: इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियां, न्यू रायल बुक कम्पनी लखनऊ, 2010
3. द्विवेदी राकेश, समाज कार्य व्यावसाय: विकास एवं चुनौतियां, न्यू रायल बुक कम्पनी लखनऊ, 2007
4. सिंह मंजीत, व्यावसायिक समाज कार्य का आविर्भाव, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008
5. सिंह मंजीत, समाज कार्य के मूल तत्व, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008
6. सूदन, सिंह कृपाल समाज कार्य: अभ्यास एवं सिद्धान्त न्यू रायल बुक पब्लिकेशन लखनऊ
7. Friedlander, W.A., Concept and Methods of Social Work
8. Chowdhary, D. Paul, Introduction to Social Work.

इकाई-3

भारत में समाज कार्य का ऐतिहासिक विकास

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य (Objective)

3.1 प्रस्तावना (Preface)

3.2 भूमिका (Introduction)

3.3 भारत में समाज कार्य का ऐतिहासिक विकास

(Historical Development of Social Work in India)

3.4 सारांश (Summary)

3.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions for Practice)

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

3.0 उद्देश्य (Objective)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

1 . भारत में समाज कार्य के ऐतिहासिक विकास को समझ सकेंगे।

2. व्यवसायिक समाज कार्य एवं सामान्य समाजिक सेवा के बीच के अन्तरों को जान सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना (Preface)

भारत में व्यवसायिक समाज कार्य का विकास 1936 से प्रारम्भ हुआ जब टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज में समाज कार्य व्यवसाय का शिक्षण एवं प्रशिक्षण प्रारम्भ हुआ| किन्तु यहां भी दूसरों की सहायता करने के प्राचीनतम् एवं परम्परागत विधियां मौजूद रही हैं जिनका उपयोग किसी न किसी रूप में भारतीय व्यवसायिक सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा किया जाता रहा है। वर्तमान में भारत में भी समाज कार्य के शिक्षण एवं प्रशिक्षण के संस्थानों की स्थापना की जा रही है तथा इनकी संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।

3.2 भूमिका (Introduction)

भारत में भी सामाजिक सहायता की परम्परा रही है। प्राचीन काल में भी विभिन्न शासकों के द्वारा लोक कल्याणकारी कार्य किये जाते रहे हैं जैसे कुएं खुदवाना, नहरें बनवाना, सराय बनवाना, चिकित्सालयों का निर्माण

करवाना आदि। किन्तु भारत में व्यवसायिक समाज कार्य का विकास बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों मे ही हुआ।

3.3 भारत में समाज कार्य का ऐतिहासिक विकास (Historical Development of Social Work in India)

भारत में प्रत्येक युग में निर्धनता व्याप्त रही है | प्रत्येक युग में समाज ने अपने समय की प्रचलित सामाजिक परम्पराओं के अनुसार निर्धनों की सहायता भी की है। भारत धार्मिक-सहिष्णुता एवं विभिन्नताओं का देश है। अनेकों प्रकार के धर्मों का यहाँ विकास हुआ। मैत्री, सहायता, दान एवं परोपकार के रूप में समाज कार्य के क्रिया-कलापों में भारतीय समाज सदैव ही अग्रणी रहा है। निर्धन व्यक्तियों की सहायता करना ईश्वरीय कृपा प्राप्त करने का सहज आधार माना जाता था। भारतीय ग्रंथों में भी इसका वर्णन किया गया है। यज्ञ, हवन, दान एवं सामूहिक प्रयासों से प्राप्त की गई वस्तुओं के समाज में वितरण की प्रणाली अति प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में सहज रूप में देखी जा सकती है।

भारत का सामुदायिक जीवन काल

इस सभ्यता के लिए साधारणतः तीन नामों का प्रयोग होता है, 'सिंधु सभ्यता', 'सिंधु घाटी सभ्यता,' और 'हड़प्पा सभ्यता'| इन तीनों शब्दों का एक ही अर्थ है। इस सभ्यता में नगरीकरण अपनी उच्चतम सीमा पर था। पुरातात्विक सामग्री से किसी नरेश के अस्तित्व का सँकेत नहीं मिलता| यह मानने का भी कोई आधार नहीं है, कि सिंधु सभ्यता किसी साम्राज्य का प्रतिनिधित्व करती थी या मोहनजोदड़ों और हड़प्पा इस साम्राज्य की दो राजधानियाँ थीं।

वैदिक साहित्य का आशय उस विपुल साहित्य से है, जिसके अंतर्गत चारों वेदों-ऋगवेद, सामवेद, यर्जुवेद एवं अथर्ववेद की संहिताए एवं उपनिषद भी आते हैं। बौद्ध काल में भी निर्धनों की सहायता की गयी और अनेक स्थानों पर मठ बनाए गए। इस काल में सड़क, तालाब, कुएँ इत्यादि भी बनवाये गये।

भारत में प्रारम्भिक दान काल

प्रत्येक धर्म में दान का विशिष्ट महत्व रहा है। आर्य, गुप्त, बौद्ध व जैन धर्म के लोग भी अपने-अपने तरीको से निर्धन लोगो की मदद करते रहते थे । यह लोगों के लिये ईश्वर की कृपा पाने का एक रास्ता था। कुछ विशेष परिस्थितियों में प्राप्त वस्तुओं के वितरण को ही दान कहा जाता था। वेदों में दान शब्द का अर्थ विभाजन माना गया है।

निजी सम्पत्ति के जन्म के साथ राजाओं का जन्म हुआ। विभिन्न धर्मो के धार्मिक नेताओं ने नहर, तालाब, कुएँ, मन्दिर तथा आश्रम बनवाये सभी कल्याणकारी कार्यो को सफलता से पूर्ण किया। भारतीय मुसलमानों ने चिकित्सालय ,मदरसे और यात्रियों के लिए मुसाफिर खानों इत्यादि का निर्माण करवाया। ग्राम पँचायतें सभी मंदबुद्धि, वृद्धों व बीमारों की सहायता करती थीं।

धार्मिक सुधार काल

इस काल में ईसाई धर्म का प्रचलन भी भारत में हो चुका था। ईसाई धर्म द्वारा हिन्दू धर्म के विविध क्षेत्रों , विशेष रूप से बाल विवाह, सती प्रथा और विधवा विवाह संबंधी सुधारों पर बल दिया गया।

चार्टर एक्ट 1813 के तहत शिक्षा का प्रावधान किया गया। अंग्रेजों द्वारा इस कानून को पारित कराया गया। उनके द्वारा शिक्षा पर अधिक बल दिया गया। 1815 में राजा राममोहन राय द्वारा आत्मीय समाज की स्थापना की गई, जिसका नाम बाद में बदलकर ब्रह्म समाज हुआ। 1863 में केशव चन्द्र सेन ने महिलाओं शिक्षा के कार्यों को आगे बढ़ाया। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर के प्रयासों द्वारा हिन्दू विधवा पुर्नविवाह अधिनियम पारित किया गया। जस्टिस रानाडे ने भी विधवा विवाह के लिए फलीभूत प्रयास किये। इण्डियन सोशल कॉन्फ्रेन्स ने कई समस्याओं की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया । 1877 में स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा बम्बई में आर्य समाज नामक धार्मिक संस्था बनाई गई जो समाज कल्याण का कार्य करती थी। 1881 में मद्रास में एक संगठन थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना की गई। इसके संस्थापक मैडम ब्लावत्सकी तथा कर्नल अॉल्कट थे। 1895 में जब श्रीमती एनी बेसेन्ट भारत आयीं उन्होंने सक्रिय रूप से हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों को उजागर करने तथा अनुष्ठानों एवं संस्कारों के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करना आरम्भ किया। 1913 में श्रीमती एनी बेसेन्ट ने समाज सुधार में अपना योगदान देना आरम्भ किया।1897 में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की गई।

धर्म निरपेक्ष सुधार काल

ईसाई मिशनरियों के कार्यों के फलस्वरूप भारतीय विचारकों ने रक्षा का पक्ष लेकर अपने विचार प्रकट किए। इसके साथ ही भारतीयों की सोच में बदलाव आया। परन्तु कुछ ईसाई प्रचारकों ने इस स्थिति का लाभ उठाकर हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन शुरू कर दिया। 1867 में प्रार्थना सभा की स्थापना हुई। मार्के भण्डारकर, चिन्तामणि चन्द्रावर्कर, नरेन्द्र नाथ सेन ने समाज कल्याण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1887 में ससिपदा बनर्जी ने हिन्दू विधवाओं के लिए एक विधवा गृह की स्थापना की। इन विधवा गृहों की स्थापना बम्बई और मद्रास में की गयी। 1920 में महात्मा गाँधी ने देश की बागडोर अपने हाथों में ले ली। गाँधी जी भारत की समाज कल्याण परियोजनाओं का क्रियान्वयन चाहते थे। इसलिए उन्होनें सर्वोदय की अवधारणा प्रस्तुत की।

समाज कल्याण द्वारा राज्य विकास

सन् 1950 में भारतीय संविधान में इस बात की घोषणा की गयी कि ,भारत में समुदाय, बच्चे, जाति, लिंग, अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियो के बीच भेद समाप्त किया जायेगा।

प्रदेश में केन्द्र तथा राज्यों द्वारा समाज कल्याण निगम की स्थापना की गयी। इस प्रकार अनेक मंत्रालयों की स्थापना हुई , जैसे-केन्द्रीय समाज कल्याण मंत्रालय, सहयोग मंत्रालय, पुर्नवास मंत्रालय, एवं सामुदायिक विकास संस्थान की स्थापना की गयी।

पहली पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत 1951 में योजना आयोग द्वारा सभी A समुदायों के लिए समाज कल्याण कार्यक्रम चलाये गए। A Central Social Welfare board की स्थापना शिक्षा मंत्रालय के अधीन 1953 में की गई। इस मण्डल द्वारा राज्यों में "State Social Welfare Advisory Committees" की स्थापना हुयी।

व्यावसायिक प्रशिक्षण एवं संगठन काल

आजादी के बाद संविधान में देश को कल्याणकारी राज्य घोषित करने से समाज कल्याण कार्यक्रमों में तेजी से वृद्धि हुई। समाज कार्य के क्षेत्र में शिक्षण एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी परिणामस्वरूप समाज कार्य शिक्षण संस्थाओं की स्थापना होने लगी।

सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिये शिक्षण एवं प्रशिक्षण का आरम्भ 1936 में Sir Dorabji Graduate School of Social Work की स्थापना से हुआ | बाद में इसका नाम 'Tata Institute of Social Sciences' हो गया। इस संस्था ने समाज कार्य का एक औपचारिक पाठ्यक्रम आरम्भ किया। यह संस्थान अभी भी समाज कार्य शिक्षा एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान कर रहा है। स्वतन्त्रता के उपरान्त 1947 में काशी विद्यापीठ, वाराणसी, कॉलेज आफ सोशल सर्विसेज की स्थापना हुई। लखनऊ विश्वविद्यालय में बाद में भी समाज कार्य विभाग की स्थापना हुई।

1947 में नियोजित विकास के आरम्भ होने से समाज कल्याण के क्षेत्र में बहुत बड़ी संख्या में प्रशिक्षण प्राप्त कार्यकर्ताओं की आवश्यकता को देखकर कई अन्य स्थानों पर समाज कार्य की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना होने लगी। आगरा, नागपुर, उदयपुर, मद्रास, पटना, कलकत्ता, मदुराई धारवार, बंगलौर, अहमदाबाद, दिल्ली, पटियाला आदि कई स्थानों पर समाज कार्य की शिक्षण संस्थाऐं स्थापित हो गयी है। लखनऊ विश्वविद्यालय में समाज कार्य की शिक्षा के पूर्व स्नातक स्तर के पाठ्यक्रम से लेकर डी.लिट. की सुविधा उपलब्ध है।

समाज कार्य की शिक्षा संस्थाओं का विकास स्वतंत्रता के बाद हुआ। 1947 तक केवल एक संस्था थी। 1958 में समाज कार्य के 6 विद्यालय थे। 1959 में तेरह, 1969 में बीस, 1978 में पैंतीस और अब लगभग 50 विद्यालयों में यह शिक्षा दी जा रही है। स्नातकोत्तर स्तर पर विभिन्न क्षेत्रों में विशेषीकरण की सुविधा उपलब्ध है।

समाज कार्य की यह शिक्षण संस्थाऐं, श्रम कल्याण व औद्योगिक प्रतिष्ठानों के कार्मिक विभागों के लिये कार्यकर्ताओं की मांग ही पूरी करती आ रही हैं। उन्हें अपने शोषण से बचाव से मदद प्रदान करती है। औद्योगिक परिवेश में समाज कार्य की प्रणलियों के प्रयोग का अवसर कम ही मिलता है और कल्याणकारी कार्य भी नाम मात्र के ही कहे जा सकते हैं। समाज कार्य की शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थाओं में वृद्धि होने से और व्यावसायिक कार्यकर्ताओं की संख्या में वृद्धि होने से बहुत सी समाज सेवी संस्थाओं में अधिक संख्या से इन कार्यकर्ताओं की नियुक्ति होने लगी है। इसीके साथ-साथ बहुत से व्यावसायिक संगठन भी बन गए हैं।

उपरोक्त विवरण से यह सिद्ध होता है कि भारत में समाजकार्य एक व्यवसाय के रूप में धीरे-धीरे विकसित होता जा रहा है| समाज कल्याण संस्थाओं में और अन्य क्षेत्रों में मुख्य रूप से श्रम कल्याण के क्षेत्र में, व्यावसायिक कार्यकर्ताओं की नियुक्तियाँ हो रही हैं एवं उनकी मांग दिनोदिन बढ़ रही है।

3.4 सारांश (Summary)

भारत में व्यवसायिक समाज कार्य का विकास तो 1936 से ही प्रारम्भ हो गया किन्तु आजादी के बाद समाज कार्य का विकास तेजी से हुआ। संविधान में देश को कल्याणकारी राज्य घोषित करने से समाज कल्याण कार्यक्रमों में वृद्धि हुई। समाज में शिक्षा एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता अनुभव होने लगी थी। तभी समाज कार्य शिक्षा संस्थाओं की स्थापना होने लगी। परिणामस्वरूप वर्तमान में भारत में भी समाज कार्य ने व्यवसायिक स्थिति का विकास कर लिया है।

3.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions for practice)

1. भारत में समाज कार्य के ऐतिहासिक विकास का वर्णन कीजिए।
2. भारत में समाज कार्य के शैक्षणिक इतिहास का उल्लेख कीजिये।

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

1. अहमद रफीउद्दीन मिर्जा, समाज कार्य दर्शन एवं प्रणालियां, शाइनिंग प्रेस लखनऊ, 2004
2. सिंह, सुरेन्द्र, पी.डी. मिश्र, समाज कार्य: इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियां, न्यू रा ॅयल बुक कम्पनी लखनऊ, 2010|
3. द्विवेदी राकेश, समाज कार्य व्यावसाय: विकास एवं चुनौतियां, न्यू रा ॅयल बुक कम्पनी लखनऊ, 2007|
4. सिंह मंजीत, व्यावसायिक समाज कार्य का आविर्भाव, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008
5. सिंह मंजीत, समाज कार्य के मूल तत्व, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008
6. सूदन, सिंह कृपाल समाज कार्य: अभ्यास एवं सिद्धान्त न्यू रा ॅयल बुक पब्लिकेशन लखनऊ
7. Friedlander, W.A., Concept and Methods of Social Work.
8. Friedlander, W.A., Introduction to Social welfare.
9. Khinduka S.K., Social Work in India.
10. Chowdhary, D. Paul, Introduction to Social Work.

इकाई-4

समाज कार्य : एक व्यवसाय

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य (Objective)

4.1 प्रस्तावना (Preface)

4.2 भूमिका (Introduction)

4.3 व्यवसाय के रूप में समाज कार्य (Social Work as a Profession)

4.4 सारांश (Summary)

4.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions for practice)

4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

4.0 उद्देश्य (Objective)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

1. समाज कार्य व्यवसाय के गुणों को जान सकेंगे।
2. भारत में समाज कार्य के व्यवसायिक रूप को जान सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना (Preface)

एक व्यवसाय के रूप में समाज कार्य विशिष्ट कार्य प्रणालियों का उपयोग करता है|समाज कार्य व्यवसाय के अन्तर्गत व्यक्ति एवं उसकी समस्याओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। समाज कार्य की कार्य प्रणालियों का विकास एक ऐतिहासिक कालक्रम में हुआ है जिन्होंने समाज कार्य को एक व्यवसाय के रूप में स्थापित कर दिया।

4.2 भूमिका (Introduction)

व्यवसाय से आशय संगठित आजीविका से है। समाज कार्य भी एक ऐसा व्यवसाय है जिसे सामाजिक मान्यता प्राप्त हो चुकी है तथा समाज कार्य व्यवसायिकों के लिये सम्मानपूर्ण जीवनवृत्ति का अवसर प्रदान करता है। इसमें विशिष्ट ज्ञान एवं निपुणताओं का उपयोग किया जाता है तथा व्यक्ति की समस्याओं को दूर करने के लिये व्यवसायिक प्रविधियों का उपयोग किया जाता है।

4.3 व्यवसाय के रूप में समाज कार्य (Social Work as a profession)

व्यवसाय एक ऐसा कार्य है जिसका उद्देश्य जीविका उपलब्ध कराना है| जिसमें विशिष्ट ज्ञान एवं निपुणता होती है और उसको करने वाले का व्यवहार अलग ही होता है। प्रोफेशन (prafession) शब्द लैटिन भाषा के प्रोफिटेरी "Profiteri" से बना है जिसका अर्थ है ''सार्वजनिक रूप से घोषणा करना'' या ''प्रतिज्ञा करना''।

वर्तमान समय में व्यवसाय शब्द का अर्थ ''संगठित जीविका'' से लिया जाता है| जिसमें एक विशेष औपचारिक ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है और जिस औपचारिक ज्ञान का एक विकसित एवं संचारित योग्य कार्यकर्ता की निपुणता द्वारा मानवीय जीवन के कुछ पहलुओं में एक कला के रूप में प्रयोग में लाया जाता है।

फ्रीडलैण्डर ने व्यवसायों के शिक्षा के विकास के तीन चरणों का उल्लेख किया है:-

1. अनुभवी अध्यापकों एवं अभ्यासकर्ताओं के सानिध्य में प्रशिक्षण।

2. शिक्षा के लिए अच्छे शिक्षण संस्थानों की स्थापना की अनिवार्यता।

3. विश्वविद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षण संस्थाओं की जगह सुनिश्चित करना एवं उन्हें अपने शिक्षण कार्यक्रम का एक प्रमुख भाग बनाना।

फ्लेक्सनर "Flexner" ने व्यवसाय के सन्दर्भ में बतलाया है कि व्यवसाय के सदस्यों में वैयक्तिक उत्तरदायित्व के साथ ज्ञान एवं विज्ञान का समावेश होना चाहिए एवं नवीन ज्ञान को समझने के लिए सम्मेलन आयोजित किये जाने चाहिए। व्यवसाय के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों पक्षों पर बराबर ध्यान देना चाहिए। व्यवसाय के अन्तर्गत यह आवश्यक है कि एक प्राविधिक ज्ञान का परस्पर सम्बन्धित भण्डार हो और यह प्राविधिक ज्ञान व्यक्तियों को एक विशिष्ट शैक्षिक पद्धति द्वारा सिखाया जा सकता हो। व्यवसाय को सामाजिक अनुमोदन प्राप्त हो एवं व्यवसाय से सम्बन्धित व्यक्तियों में सामूहिक भावना का होना नितान्त अवश्यक है। इनको अपने कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों को कुशलता से निभाना चाहिए। व्यवसाय का सम्बन्ध साधारण जनता से होना चाहिए, किसी व्यक्ति या समूह विशेष से नहीं।

समाज कार्य एक व्यवसाय के रुप में

समाज कार्य व्यवसाय में निम्नलिखित गुणों का उल्लेख किया जा रहा है जो समाज कार्य को व्यवसाय के रूप में सिद्ध करता है-

1. क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक ज्ञान

समाज कार्य वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित है। यह किसी कल्पना में विश्वास नहीं करता है। इसका अधिकांश ज्ञान अन्य विज्ञानों से लिया गया है, जो कि पूरी तरह से जांचा एवं परखा है एवं इसका शेष भाग अभ्यास के आधार पर विकसित किया गया है। इसी कारण समाज कार्य का ज्ञान व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक रूप ग्रहण करता है। समाज कार्य के विषय वस्तु में मानव व्यवहार तथा सामाजिक पर्यावरण के परिदृश्य में व्यक्तित्व, इसके कारक, सिद्धान्त, सामाजिक पक्ष, तथा मनोचिकित्सीय पक्ष, मानव सम्बन्ध, समूह, सामाजिक संस्थायें, समाजीकरण, सामाजिक नियन्त्रण, पर्यावरण, प्रौद्योगिकी आदि महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। समाज कार्य में विशेष निपुणता, बौद्धिक प्रशिक्षण, वैयक्तिक समाज कार्य, सामूहिक समाज कार्य, सामुदायिक संगठन, समाज कल्याण प्रशासन, सामाजिक क्रिया तथा समाज कार्य शोध के द्वारा व्यावसायिक कार्यकर्ताओं में योग्यता का विकास किया जाता है। इसके

अतिरिक्त जो भी नया ज्ञान सामने आता है, वह साहित्य एवं सम्मेलनों के माध्यम से कार्यकर्ताओं तक पहुँचाया जाता है।

2. विशेष प्रणालियाँ एवं प्रविधियाँ

समाज कार्य का उद्देश्य मानव कल्याण है, जिसमें दूसरे व्यवसाय भी रूचि रखते है| समाज कार्य की अपनी विशेष प्रणालियाँ है, जो इसकी अपनी विशेषता है| इसमें व्यक्तियों एवं समूहों की भावनाओं को समझने एवं समस्याओं से निपटने की क्षमता पायी जाती है। यह सेवार्थी को आत्मनिर्भर बनाने में निपुण होता है | जिसमें समुदाय तथा संस्था के स्त्रोतों एवं साधनों को समय-समय पर उपयोग में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त समाज कार्य में विज्ञान एवं ज्ञान दोनों का समावेश मिलता है।

3. समाज कार्य की शैक्षिक पद्धति

समाज द्वारा मान्यता प्राप्त मुख्य व्यवसायों के शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहें हैं| इसकी शिक्षा स्नातक, स्नात्कोत्तर, पी.एच.डी. स्तर पर दी जाती है। समाज कार्य की शिक्षा अनुभवी शिक्षकों एवं अभ्यासकर्ताओं की देखरेख में दी जाती है। विद्यार्थियों को समाज कार्य अभ्यास के लिए विभिन्न संस्थाओं, जैसे चिकित्सालयों, श्रमकल्याण केन्द्रों, आवासगृहों, विद्यालयों, मलिन बस्तियों, सामुदायिक विकास केन्द्रों निर्देशन केन्द्रों आदि में क्षेत्रीय कार्य करने के लिए भेजा जाता है।

4. व्यावसायिक संगठन

व्यावसायिक समिति की स्थापना, व्यावसायिक संगठन द्वारा सेवा के स्तर या मानदण्ड निर्धारित किया जाना, आचार संहिता का ग्रहण किया जाना एक और विशेषता है जो किसी भी जीविका को व्यवसाय का स्तर प्रदान करती है। इन व्यावसायिक संगठनों का कार्य समाज कार्य व्यवसाय के स्तर को ऊँचा उठाना तथा कार्यकर्ताओं में उच्चतर योग्यताओं, क्षमताओं एवं निपुणताओं का विकास करना है।

शिक्षण संस्थानों के स्तर पर, कार्यकर्ताओं के स्तर पर, समाज कार्य के विद्यार्थियों के स्तर पर, समाज कार्य के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं के स्तर पर जैसे मेडिकल सोशल वर्कशाप, साइक्रिऐटिक सोशल वर्कर्स, ग्रुप वर्कर्स आदि जैसे व्यावसायिक संगठन मिलते हैं। कुछ देशों में समाज कार्य की भी समितियां बनी हुई है।

5. आचारसंहिता

व्यावसायिक कार्यकर्ताओं के पालन के लिए आचार संहिता का निर्माण किया जाना एक ऐसा महत्वपूर्ण कार्य है, जो एक व्यावसायिक संगठन ही करते है।

प्रो. सैयद अहमद खान ने उच्च आचार संहिता के निम्नलिखित भागों का उल्लेख किया हैः

अ) सेवार्थियों से सम्बन्ध |

ब) नियोजक संस्था से सम्बन्ध |

स) व्यावसायिक साथियों से सम्बन्ध |

द) समुदाय से सम्बन्ध |

य) समाज कार्य के व्यवसाय से सम्बन्ध |

6) सामुदायिक मान्यता एवं अनुमोदन

व्यवसाय को सामुदायिक अनुमोदन प्राप्त होना आवश्यक माना गया है।जैसे वेश्यावृत्ति या भिक्षावृत्ति को सामाजिक अनुमोदन प्राप्त नहीं है जिससे इनको व्यावसायिक स्तर नहीं दिया जा सकता है। सरकारी एवं गैर सरकारी दोनों ही निजी संस्थाऐं समाज कार्य में शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्राप्त कार्यकर्ताओं की ही नियुक्ति करती है।

समाज कार्य की शिक्षण संस्थाओं में वृद्धि इस बात का प्रतीक है, कि इसे समाज का अनुमोदन प्राप्त है और समाज के विशेष क्षेत्रों में केवल समाज कार्य की शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्राप्त कार्यकर्ताओं को ही नियुक्त किया जाना इस बात को सिद्ध करता है कि समाज कार्य को मान्यता प्राप्त है।

भारत में समाज कार्य का व्यावसायिक रुप

1948 से लेकर अब तक समाज कार्य की शिक्षण संस्थाओं का विकास जिस गति से हुआ है वह इस बात का प्रतीक है कि भारतीय समाज में समाज कार्य को मान्यता प्राप्त है और वह धीरे-धीरे व्यावसायिक रुप धारण करता जा रहा है। परन्तु यह भी सही है कि भारत में समाज कार्य को व्यवसाय के रूप में अभी वह स्तर प्राप्त नहीं है जो अमेरिका जैसे देशों में प्राप्त हो चुका है।

भारत में समाज कार्य किस सीमा तक व्यवसाय के मानदण्डों या कसौटी पर खरा उतरता है, इसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती हैः

1. क्रमागत एवं वैज्ञानिक ज्ञान

समाज कार्य ज्ञान में निरन्तर वृद्धि हो रही है। अनेक समाज कार्य के स्कूलों में शोध की सुविधा पायी जाती है। जिनमें ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्रों में खोज की जा रही है। इसके अतिरिक्त सभी स्कूलों में मानव व्यवहार, पर्यावरण संस्कृति, प्रोद्योगिकी, सामाजिक विकास आदि विषयों का अध्ययन किया जाता है। सबसे बड़ी कठिनाई जो स्वीकार की जा सकती है, वह यह है कि भारत में समाज कार्य के सिद्धान्तों , प्रणालियों एवं प्रविधियों, व्यावहारिक प्रयोग के विषय में नवीन अनुभवों का विकास एवं शोध -कार्य उस स्तर के नहीं हो पा रहे हैं जिससे समाज कार्य को एक व्यवसाय के रुप में विकसित किया जा सके।

2. व्यावसायिक शिक्षा

भारत में समाज कार्य की परम्परा उतनी ही प्राचीन है, जितनी अन्य देशों में मुख्य रूप से यूरोपीय देशों में मानी जाती है। भारत में समाज कार्य की औपचारिक शिक्षा का आरम्भ बींसवीं सदी में सन् 1936 से प्रारम्भ हुआ है। बम्बई में एक संस्था ‘सोशल सर्विस लीग’ ने एक छः सप्ताह का संक्षिप्त पाठ्यक्रम समाज कार्य कर्ताओं के प्रशिक्षण हेतु बनाया। 1936 में बम्बई में ही ‘सर दोराब जी टाटा ग्रेजुएट स्कूल आफ सोशल वर्क’’ की स्थापना हुई। सन् 1947 में काशी विद्यापीठ में समाज विज्ञान के अंतर्गत समाज कार्य विद्यालय खुला। इसी वर्ष डेलही स्कूल आफ सोशल वर्क खुला। सन् 1949 में लखनऊ विश्वविद्यालय में समाज कार्य प्रशिक्षण प्रारम्भ हुआ। इसी के अन्तर्गत आगरा, दिल्ली, उदयपुर, नागपुर, मद्रास, पटना, कलकत्ता, बम्बई, मदुराई, धारवाड़, बैंगलोर, आन्द्राबाद, बड़ौदा, कुरूक्षेत्र, पटियाला आदि कई स्थानों पर विश्वविद्यालयों में समाजकार्य की औपचारिक शिक्षा दी जाती है। इनमें स्नात्कोत्तर स्तर की शिक्षा के साथ-साथ पी0एच0डी0 की उपाधि के लिए भी सुविधायें उपलब्ध

हैं। युनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग) द्वारा नियुक्ति की गई समिति ने 1960 में अपने प्रतिवेदन में यह संस्तुति की, ताकि समाज कार्य की शिक्षा अन्य विद्यालयों में पूर्व स्नातक स्तर पर भी दी जानी चाहिए।

3. व्यावसायिक संगठन

व्यावसायिक संगठन होने के मापदण्ड पर समाज कार्य पूरी तरह से खरा नहीं उतरता। भारत में समाज कार्य का व्यावसायिक संगठन तो है, परन्तु यह संगठन बहुत ही दुर्बल है। सन् 1951 में इंडियन एसोसियेशन ऑफ अलुमनाई ऑफ स्कूल्स ऑफ सोशल वर्क'' बनाया गया जिसका नाम बदल कर इंडियन एसोसियेशन ऑफ ट्रेंड सोशल वर्कर्स'' कर दिया गया। समाज कार्य की सह समितियाँ विद्यालय के स्तर पर भी हैं और देश के स्तर पर भी हैं। एक संगठन इंडियन कानफ्रेन्स ऑफ सोशलवर्क है, जिसका नाम बदलकर इंडियन कांउसिल ऑफ सोशल वेलफेयर कर दिया गया| इसका मुख्य कार्य वार्षिक सम्मेलन कर समाज कल्याण के विभिन्न पहलुओं पर विचार-विमर्श करना है। इस समिति की शाखायें कई नगरों में भी है।

दिसम्बर, 1957 में मद्रास में एक और अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना हुई। इस संस्था का नाम इण्टर-नेशनल फ्रेडरेशन ऑफ सोशल वर्क्स है। इस फ्रेडरेशन की सदस्यता उन राष्ट्रीय व्यावसायिक समाज कार्य संगठनों को ही दिया गया है, जो अपने नियमों में सदस्यता के स्तर की व्याख्या प्रस्तुत करेंगें। अमेरिकन एशोसिएशन ऑफ सोशल वर्कस इस फेडरेशन के सदस्य हैं।

'असोसियेशन ऑफ मेडिकल एण्ड साइक्याट्रिक सोशल वर्क' भी समाज कार्य व्यवसाय की सहायता कर रहा है। इसके अतिरिक्त 'लखनऊ विश्वविद्यालय सोशल वर्क एलुमिनाई अशोसियेशन' भी एक पत्रिका लखनऊ इनवरसिटी जनरल ऑफ सोशल वर्क'' जिसे बदल कर अब कान्टम्प्रेरी सोशल वर्क (Contemporary Social Work) कर दिया गया है, के नाम से प्रकाशित करती है। कुछ समाज कार्य विद्यालय एवं विश्वविद्यालय अपने स्तर पर प्रकाशन करते हैं। जैसे एक प्रसिद्ध पत्रिका टाटा इस्न्टीट्यूट ऑफ सोशल वर्क द्वारा ''इंडियन जनरल ऑफ सोशल वर्क'' प्रकाशित होता हैं। निर्मला निकेतन बम्बई भी एक पत्रिका तथा महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ वाराणसी ने भी एक पत्रिका प्रकाशित की है। सामाजिक संगठन 'सखा' द्वारा भी एक पत्रिका ''प्रोफेशनल सोशल वर्क परसपेक्टिव'' का प्रकाशन लखनऊ से किया जा रहा है। इस प्रकार भारत में समाज कार्य धीरे-धीरे व्यावसायिक गुणों को अर्जित करता जा रहा है। लेकिन व्यवसायीकरण की गति काफी धीमी है। इसके धीमे होने के अनेक कारण है। और यदि इन कारणों को अतिशीघ्र दूर नहीं किया गया तो समाज कार्य की स्थिति और भयावह हो सकती है।

4. निपुणतायें एवं प्रणालियाँ

भारतीय सामाजिक कार्यकर्ता के पास अमेरिका में प्रयोग में लाई जाने वाली निपुणतायें है जो कि भारतीय परिवेश में प्रासांगिक नहीं सिद्ध हो पा रही है।भारत में जिन विशेष प्रविधियों एवं निपुणताओं की आवश्यकता है, उनका विकास नहीं हो पा रहा है। सामाजिक क्रिया की प्रविधि, आत्मा को जागृति करने की प्रविधि, सम्प्रेषण की प्रविधि, विचारों में गति लाये जाने की प्रविधि जैसी प्रविधियों का विकास किया जाना नितान्त आवश्यक प्रतीत हो रहा है। इसी प्रकार प्रणालियों को भी भारतीय रूप प्रदान किये जाने की आवश्यकता है।

5. आचार संहिता

समाज कार्य की व्यावसायिक समितियाँ सक्रिय एवं प्रभावशाली न होने के कारण सामाजिक कार्यकर्ताओं को समाज कार्य की आचार संहिता का पालन करने पर विवश करने का कोई प्रयास भी नहीं किया जा रहा है।

भारत में आचार संहिता के विकास का उत्तरदायित्व ''असोसियेशन ऑफ स्कूल्स ऑफ सोशल वर्क इन इंडिया'' को 1960 में सौंपा गया था। उनके निम्नलिखित कार्य निम्नवत हैं:

1. समाज कार्य को व्यावसायिक शिक्षा के उच्च स्तर पर उठाना।
2. समाज कार्य को वैज्ञानिक आधार प्रदान करना।
3. संकाय के अध्यापकों को परस्पर मिलने तथा विचारों के आदान -प्रदान का सुअवसर देना।
4. संगोष्ठियों तथा पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों ¼Refresher Courses½ को आयोजित करना।
5. अनुसंधान को बढ़ावा देना।
6. समाज कार्य का साहित्य प्रकाशित करना।
7. राष्ट्रीय फोरम के रूप में कार्य करना।

समाज कार्य की शिक्षण एवं प्रशिक्षण के बाद जो एक विशेष व्यक्तित्व लेकर विद्यार्थी समाज में पर्दापण करते हैं उनसे यही आशा की जाती है कि वह समाज कार्य द्वारा स्वीकृत आचार संहिता का पालन आप-हम और सभी लोग करेंगे के आधार पर करेंगे।

6. सामाजिक मान्यता और अनुमोदन

भारत में समाज कार्य को धीरे-धीरे मान्यता प्राप्त होनी आरंम्भ हो चुकी है। 'कारखाना अधिनियम' के अनुसार, ''औद्योगिक कारखानों में श्रमिकों की संख्या के अनुसार श्रमकल्याण अधिकारी नियुक्त करना नितान्त आवश्यक है। कई अन्य क्षेत्रों जैसे बाल विकास, महिला सशक्तिकरण, परिवार कल्याण नियोजन, बाधितों का कल्याण आदि क्षेत्रों में प्रशिक्षण प्राप्त कार्यकर्ताओं की नियुक्ति की जाती है। इसके अतिरिक्त मेडिकल सोशल वर्कर नियुक्त किये जाते हैं। यह निपुणता उन्हें स्नातकोत्तर स्तर पर शोध कार्य के पाठ्यक्रमों, जिसमें कक्षा व्याख्यान, क्षेत्रीय शोध कार्य पर आधारित प्रतिवेदन आदि को सम्मिलित कर उनके द्वारा सिखाई जाती है।

उपरोक्त विवेचनाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि भारत में समाज कार्य को मान्यता प्राप्त हो रही है और उसे समाज का अनुमोदन प्राप्त हो रहा है। किन्तु यह तब तक सम्भव नहीं है, जब तक कि सामाजिक कार्यकर्ता विभिन्न सामाजिक समस्याओं जैसे सामाजिक अन्याय, सामाजिक शोषण, सामाजिक तनाव आदि को शीघ्र से शीघ्र दूर करने में सक्रिय भूमिका का योगदान नहीं देते हैं।

4.4 सारांश (Summary)

एक व्यवसाय के रूप में समाज कार्य का विकास चर्च के दान एवं लोक कल्याण के रूप में राज्य की भूमिका से हुआ। किन्तु शीघ्र ही समाज कार्य ने एक व्यवसायिक स्वरूप प्राप्त कर लिया इसी अनुक्रम में समाज कार्य में छः कार्य प्रणालियों का विकास हुआ | जिनके माध्यम से व्यक्ति की सामान्य एवं विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति कार्यकर्ताओं के द्वारा की जाती है। इन कार्य प्रणालियों ने समाज कार्य के व्यवसायीकरण में अभूतपूर्व योगदान दिया साथ ही इन प्रणालियों ने सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिये आजीविका का भी प्रबन्ध किया | समाज

कार्य व्यवसाय के लिये एक विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है इसलिये भी समाज कार्य एक व्यवसाय के रूप में स्थापित हो सका है।

4.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions for the practice)

1. ''समाज कार्य एक व्यवसाय है'' सिद्ध कीजिए।
2. क्या समाज कार्य भारत में एक व्यवसाय है? इसे स्पष्ट कीजिए।

4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

4. अहमद रफीउद्दीन मिर्जा, समाज कार्य दर्शन एवं प्रणालियां, शाइनिंग प्रेस लखनऊ, 2004
5. सिंह, सुरेन्द्र, पी.डी. मिश्र, समाज कार्य: इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियां, न्यू रायल बुक कम्पनी लखनऊ, 2010
6. द्विवेदी राकेश, समाज कार्य व्यावसाय: विकास एवं चुनौतियां, न्यू रा◌ॅयल बुक कम्पनी लखनऊ, 2007
7. सिंह मंजीत, व्यावसायिक समाज कार्य का आविर्भाव, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008
8. सिंह मंजीत, समाज कार्य के मूल तत्व, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008
9. सूदन, सिंह कृपाल समाज कार्य: अभ्यास एवं सिद्धान्त न्यू रायल बुक पब्लिकेशन लखनऊ
10. Friedlander, W.A., Concept and Methods of Social Work.
11 Friedlander, W.A., Introduction to Social welfare.
12. Khinduka S.K., Social Work in India.
13. Chowdhary, D. Paul, Introduction to Social Work.

इकाई-5

समाज कार्य व्यवसाय के समक्ष चुनौतियां

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य (Objective)

5.1 प्रस्तावना (preface)

5.2 भूमिका (Introduction)

5.3 समाज कार्य व्यवसाय के समक्ष चुनौतियां

(Challenges before the Social Work Profession)

5.4 सारांश (Summary)

5.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions for the practice)

5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (Refeerences)

5.0 उद्देश्य (Objective)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप

1. समाज कार्य व्यवसाय के समक्ष आने वाली चुनौतियों की प्रकृति के बारे में जान सकेंगे।
2. समाज कार्य व्यवसाय के समक्ष आने वाली चुनौतियों के प्रकारों के बारे में जान सकेंगे

5.1 प्रस्तावना (preface)

एक व्यवसाय के रूप में समाज कार्य की स्थापना नवीन परिघटना है। समाज कार्य के द्वारा अपने आप को एक व्यवसाय के रूप में प्रस्तुत करना अत्यन्त चुनौतीपूर्ण रहा हैं क्योंकि इसकी व्यवसायिक प्रस्थिति एवं मान्यता को लेकर प्रश्नचिन्ह खडे किये जाते रहे हैं। जिनका प्रतिउत्तर समाज कार्य व्यवसाय के द्वारा समय-समय पर दिया जाता रहा है। इसी क्रम में समाज कार्य ने अपनी विशिष्ट कार्य प्रणलियों का विकास किया है। ऐतिहासिक कालक्रम के अनुसार भी व्यवसायिक समाज कार्य व्यक्ति एवं समाज की समस्याओं को दूर करने में सफल रहा है तथा इसने अपने अस्तित्व के समक्ष उत्पन्न संकटों एवं चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना किया है।

5.2 भूमिका (Introduction)

समाज कार्य व्यवसाय अपने विशिष्ट ज्ञान एवं कार्य प्रणालियों के माध्यम से समाज के आवश्यकताओं को पूरा करता है। किन्तु इसके व्यवसायिक क्षमताओं को लेकर संदेह उत्पन्न किया जाता रहा है तथा सामान्य ढंग से प्रदान की जाने वाली सेवाओं एवं समाज कार्य व्यवसाय में विशेष अन्तर नहीं किया जाता है। इसलिये आज भी समाज कार्य व्यवसाय को चुनौतियों का सामना करना पडता है।

5.3 समाज कार्य व्यवसाय के समक्ष चुनौतियां (Challenges before Social Work profession)

कोई भी व्यवसाय समाज में सामाजिक रूप से उपयोगी तभी हो सकता है जब वह अपनी व्यावसायिक क्षमताओं का प्रयोग करते हुए सामाजिक रूप से लोगों को संतुष्ट कर सके। समाज में कोई भी शिक्षा एवं व्यवसाय किसी न किसी रूप में एक दूसरे पर निर्भर अवश्य है। कोई भी व्यवसाय समाज के परिप्रेक्ष्य के बिना अपनें उद्देश्यों, विषय वस्तु एवं माध्यमों का निर्धारण नहीं कर सकता है। समाज कार्य व्यवसाय के अन्तर्गत सामाजिक आवश्यकताओं, आयामों एवं जटिलताओं का समावेश गहराई पूर्वक दिखना चाहिए| जिसके द्वारा यह अन्य व्यवसायों एवं कार्यों के परिप्रेक्ष्य में नये ज्ञान एवं दृष्टिकोण को अपने अंदर समाहित कर सके।

यह दुर्भाग्य की बात है कि छ दशक बीतने के बाद भी भारत में समाज कार्य अभी भी एक नए व्यवसाय के रूप में दिखलाई पड़ता है या इसको यह कह सकते है कि अपूर्ण व्यवसाय के रूप में दिखता है| क्योंकि यह व्यवसाय अपनी व्यवसायिक क्षमताओं के आधार पर समाज में अपनी स्वीकृति नहीं सिद्ध कर पाया है। जैसा कि मंडल ने 1983 में अवलोकन किया कि भारत में समाज कार्य की शिक्षा समाज की आवश्यकताओं के परिपेक्ष्य में समसामयिक नहीं है। भारतीय समाज धीरे-धीरे बाहरी विश्व के सम्पर्क में आने के कारण बहुत ज्यादा जटिल होता जा रहा है तथा उसने विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में बहुत अधिक वृद्धि की है। जिसके परिणामस्वरूप समाज कार्य व्यवसाय के समक्ष बहुत सी गम्भीर चुनौतियाँ हैं, जिससे इस व्यवसाय को अपने अस्तित्व को बनाए रखने में कठिनाईयाँ महसूस हो रही है| यह चुनौतियाँ उसे अंदर व बाहर से प्राप्त हो रही है।

समाज कार्य व्यवसाय के समक्ष तीन स्तर पर चुनौतियाँ है :--

1. समाज कार्य शिक्षा के विभागों/विद्यालयों के स्तर पर।
2. समाज कार्य व्यवसाय के अभ्यास के स्तर पर।
3. व्यवसायिक मापदण्ड स्थापित करने वाले व्यवसायिक संगठनों के स्तर पर।

समाज कार्य के बाहर

समाज कार्य व्यवसाय को बाहर से प्राप्त होने वाली चुनौतियों को मुख्य रूप से चार स्तरों पर जाना जा सकता है:

1. अन्य व्यवसाय जैसे गृहविज्ञान, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र द्वारा।
2. गैर सरकारी संगठन एवं गाँधीवादी विचारधारा।
3. नौकरशाही।
4. विभिन्न सामाजिक आन्दोलनों से जुड़े हुए व्यक्ति तथा स्वयं व्यवसाय के सेवार्थ में।

भारत में यह चुनौतियाँ भविष्य को देखते हुए एक गहन एवं त्रुटिरहित विश्लेषण की मांग करती हैं। इन सबके अतिरिक्त भारतीय समाज के बदलते हुए प्रतिमानों ने विभिन्न प्रकार की नई-नई समस्याओं को जन्म देते हुए सामाजिक कार्यकर्ता के सामने गम्भीर संकट पैदा किया है।

भारत में जहाँ एक ओर बहुत अधिक जनसंख्या वृद्धि हो रही है | जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार की समस्यायें जन्म ले रही हैं तथा इस परिपेक्ष्य में सरकार द्वारा परिवार नियोजन एवं परिवार कल्याण कार्यक्रम भी चलाए जा रहे हैं| जिनके बहुत अच्छे तथा सकारात्मक परिणाम हमको देखने को नहीं मिलते हैं। जनसंख्या वृद्धि

के परिणामस्वरूप ही समाज में कृषि हेतु भूमि लगातार कम होती जा रही है। जनसंख्या वृद्धि ने ही समाज के समक्ष आवास की समस्या उत्पन्न की है | औद्योगिक राज्यों का जन्म हो रहा है, खाद्य पदार्थो की कमी हो रही है, लोग पीने के पानी के अभाव में मर रहे हैं। विभिन्न प्रकार की बीमारियों एवं प्रदूषण में निरन्तर वृद्धि हो रहा है। ऐसे लोगों की संख्या बढ़ रही है जिनके पास छत नहीं है। शहरों में मलिन बस्तियो का जन्म हो रहा है|

''1991 की जनगणना में 151.11 लाख आवास राष्ट्र में थे जिनमें 15 लाख आवास ऐसे थे जिनमें केवल 1 कमरे थे |'' (महा निबन्धक व जनगणना आयुक्त, 1993) हमारी जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग अभी भी अशिक्षित है। अभी भी सभी शत-प्रतिशत बच्चों का विद्यालयों में प्रवेश एक सपना है। विद्यालयों में बच्चों की उपस्थिति कम है। प्राइमरी शिक्षा में गंभीर अनियमितताएं मिल रही हैं। ग्रामीण एवं शहरी शिक्षा में अन्तर है। समाज में बालक-बालिकाओं में भेदभाव जारी हैं। समाज में दबे हुए अल्पसंख्यकों की संख्या बढ़ रही हैं | विभिन्न प्रकार की दैनिक आवश्यकताओं-कपड़ा, आवास, शिक्षा, जल एवं खाद्य पदार्थो में निरंतर कमी हो रही है।

भारत में गरीबी की समस्या विकराल रूप लिए हुए है। गरीबी रेखा में नीचे रहने वाले लोगों की संख्या में वृद्धि हो रही है। लोगों की प्रति व्यक्ति आय में मामूली वृद्धि परिलक्षित होती है। विकास कार्यो से संबंधित बहुत अधिक बजट का भार देश की रक्षा के ऊपर खर्च किया जा रहा है, जोकि भारत वर्ष को गरीबी की ओर ले जा रहा है।

बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि हो रही है। विशेषकर पढ़े लिखे लोगों को संख्या में काम चाहने वाले बेरोजगार की संख्या 106-107 मिलियन तक पहुंच गयी है। काम करने वाले बहुत से ऐसे व्यक्तियों की संख्या असंगठित एवं अनौपचारिक क्षेत्रों में देखने को मिल रही है। जहाँ उन्हें विभिन्न प्रकार के अत्याचारों एवं उत्पीड़नों का सामना करना पड़ रहा है। देश में अत्यधिक विकास की गति ने विलासी उपभोग से सम्बन्धित वस्तुओं के निर्माण को प्रोत्साहित किया है जोकि देश के अमीर लोगों के प्रभाव को बढ़ावा देती है। समाज में प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन के कारण विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक असमानताएं जन्म ले रही हैं, जो किसी न किसी रूप में हमे प्रभावित करती हैं। फलस्वरूप ग्रीन हाउस का प्रभाव बढ़ रहा है तथा ओजोन परत का क्षरण हो रहा है|

समाज में कानून एवं व्यवस्था की स्थिति में गिरावट आ रही है। विभिन्न प्रकार के अपराध तथा विसंगतियाँ समाज में उत्पन्न हो रही हैं। यहाँ तक की राजनीति भी अपराध की ओर प्रेरित हो रही है। विभिन्न प्रकार के अपराधी तथा माफिया जन्म ले रहे हैं | जिसके परिणामस्वरूप भारत का आम नागरिक डरा व सहमा हुआ है।

नगरीकरण तथा औद्योगीकरण के साथ –साथ दुर्घटनाओं की संख्या भी बढ़ रही है। लोग शारीरिक एवं मानसिक रूप से विकलांग हो रहे हैं। विभिन्न प्रकार की जहरीली गैसों एवं रसायनों के खतरनाक उपयोग के परिणामस्वरूप नयी-नयी बीमारियाँ जन्म ले रही हैं। हमारे आधुनिक जीवन में चिन्ता एवं तनाव के कारण कई प्रकार की समस्याएं जन्म ले रही है।

देश में सामाजिक सौहार्द एवं एकीकरण पर खतरा बढ़ता जा रहा है। धर्मवाद, जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद बढ़ता जा रहा है। लोगों में व्यक्तिवाद, भौतिकवाद तथा दूसरे लोगों को हानि पँहुचाते हुए लाभ पाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। जीवन में भौतिकता बढ़ रही है, जिसके कारण शक्ति एवं महत्वाकांक्षाओं पर व्यक्ति ज्यादा जोर दे रहा है | इसके लिए वह किसी भी स्तर तक जाने को तैयार है। व्यक्ति आत्मकेन्द्रित हो गया है। आज के समय में हत्या, बलात्कार, अपहरण, दहेज, भ्रष्टाचार इत्यादि के मामलों में वृद्धि हो रही हैं। वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति अपनी अधिकारों के प्रति तो सचेत हुआ है साथ ही वह दूसरों के अधिकारों में भी हस्तक्षेप कर रहा हैं। यह सब परिस्थितियां मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिए एक गंभीर समस्या बनती जा रही है।

विभिन्न प्रकार के उद्योगों एवं वस्तुओं के उत्पादन की आड़ में उद्योगपति और दुकानदार भी तरह-तरह के असामाजिक कार्यो में लिप्त हैं। जैसे कि कृत्रिम वस्तुओं का निर्माण, ग्राहकों के साथ धोखाधड़ी, काला-बाजारी, माप-तौल में कमी, वैधता समाप्त होने के बाद भी वस्तुओं की बिक्री,इत्यादि। क्रेताओं व उपभोक्ताओं की स्थिति बहुत खराब है। उपभोक्ताओं को उनकी सुरक्षा के लिए विशेष प्रकार के सहायता की आवश्यकता है। जिसके लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम बनाए गए है। नई-नई आर्थिक नीति के परिणामस्वरूप उदारीकरण तथा विभिन्न प्रकार के उद्योगों को प्रोत्साहन मिला। अनेक प्रकार की बाधाएं एवं नियंत्रण दूर हुए, जिनसे निजीकरण और वैश्वीकरण को प्रोत्साहन मिला। जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक समस्याऐं उत्पन्न हुई। सार्वजनिक उपक्रमों की उपेक्षा का दौर भी प्रारम्भ हुआ जिससे सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों के बीच असमानतायें बढ़ीं। हमारी निर्यात-नीति में परिवर्तन हुआ, तकनीकी सुधार में वृद्धि हुई।

विभिन्न प्रकार की आकस्मिक घटनाओं मुख्यतया मृत्यु एवं दुर्घटना, शारीरिक अपंगता, नयी एवं घातक बीमारियाँ जैसे एड्स आदि एवं पारम्परिक सामाजिक सुरक्षा संस्थाओं जैसे- संयुक्त परिवार, धार्मिक संगठनों, दानदाता संस्थाओं, आदि के बिखराव ने सामाजिक सुरक्षा को और भी अधिक प्रासंगिक बना दिया है।

भौतिक वस्तुओं के उपभोग की सतत रूप से बढ़ती लालसा, आवश्यक सेवाओं एवं संसाधनों का आम आदमी से दिन प्रतिदिन दूर होते जाना, सामाजिक तन्त्र द्वारा न्याय आधारित प्रणाली का निरन्तर क्षय एवं समाज में बढ़ता असन्तोष यहाँ तक कि मूलभूत सेवाओं का भी अभाव व्यक्ति एवं समाज में निरन्तर आक्रोश एवं असन्तोष को जन्म दे रहा है।

ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर लोगों का पलायन एवं सामाजिक-आर्थिक विकास नें शहरों में झुग्गी-झोपड़ियों के अनियोजित विकास को बढ़ावा दिया है। शरणार्थियों का पलायन, मुख्य रूप से अल्पसंख्यक समुदायों के प्रति समाज में व्याप्त हिंसा एवं सरकार द्वारा समाज को मौलिक सुरक्षा प्रदान करा सकने में असफल होना, सामाजिक व्यवस्था में अनेक जटिल समस्याओं को जन्म दे रहा है।

महिलाओं द्वारा जीवन एवं सभ्यता के प्रत्येक क्षेत्र में समान भागीदारी ने व्यक्ति की भूमिकाओं को लेकर एक संघर्ष की स्थिति पैदा कर दी है, जो एक जटिल समस्या के रूप में सामने आ रही है। पारम्परिक रूप से जहाँ परिवार में बच्चों को परिवार के सदस्यों की अलग-अलग भूमिकायें सामाजिक एवं मानसिक सुरक्षा प्रदान करती थी| वहीं अब इनके बिखराव ने जटिल समस्याओं को जन्म देना शुरू कर दिया है। परिवार के द्वारा किये जाने वाले ज्यादातर कार्यो को अब समाज के विभिन्न व्यावसायिक संगठनों ने अंजाम देना शुरू कर दिया है, जिससे परिवार के अस्तित्व पर ही खतरा मंडराने लगा है। समाज कार्य को व्यवसाय के रूप में विकसित एवं स्थापित होने के लिए समाज की उपरोक्त स्थितियों, समस्याओं एवं चुनौतियों को देखते हुए उनके समाधान प्रस्तुत करने की दिशा में कार्य करना होगा।

समाज कार्य व्यवसाय के अन्तर्गत व्याप्त चुनौतियां

(अ) समाज कार्य विभाग/समाज कार्य विद्यालयों के समक्ष समाज कार्य शिक्षा से सम्बन्धित चुनौतियां

(1) समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं एवं मौलिक मुद्दों जैसे जाति व् लिंग आधारित विभेदीकरण, अन्याय, गरीबी, बेरोजगारी, कुपोषण, अशिक्षा, गन्दगी, मानवाधिकारों का हनन, ग्राहकों का शोषण आदि, सिलिंग द्वारा जमीन के दुबारा बंटवारे, बँटाईदारों को जमीन का मालिकाना हक, जमींदारी- उन्मूलन, परिवार के एक सदस्य को रोजगार की गारण्टी, मुख्यतया उन लोगों पर प्रतिबन्ध लगा कर जिनके परिवार के लोग सरकारी नौकरियों में पहले

से मौजूद हैं, एवं उदार ब्याज प्रणाली के अन्तर्गत लोगों को ऋण प्रदान करवाकर रोजगार सुनिश्चित करने की व्यवस्था, 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए शिक्षा सुनिश्चित करना एवं सभी के लिए मकान की व्यवस्था जैसे मुद्दों को समाज कार्य शिक्षा के अन्तर्गत सम्मिलित करना चाहिए। मनो-सामाजिक समस्याओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है एवं व्यक्तिगत समूह एवं समुदाय की मनोसामाजिक समस्याओं को दूर करने के लिए उनके स्तर पर सही एवं संतुलित समाधान प्रस्तुत करना होगा एवं सामाजिक तंत्र को भी बदलने की आवश्यकता है। खास कर तब, जब यह तंत्र उनकी समस्याओं के लिए जिम्मेदार है।

(2) समाज कार्य विषय के अन्तर्गत सामाजिक नीति, सामाजिक योजना एवं सामाजिक विकास आदि से सम्बन्धित विषय भारतीय समाज में बदलाव लाने हेतु ज्यादा मददगार सिद्ध होंगे। विशेष रूप से मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय जैसे मुद्दे अतः इन्हें समाज कार्य शिक्षा के अन्तर्गत अधिक महत्व देने की आवश्यकता है।

(3) मानव संसाधन विकास एवं लोक आधारित विकास को समाज कार्य विषय के अन्तर्गत समुचित स्थान देने की आवश्यकता है। समाज कार्य शिक्षा में मानव सम्बन्धों के पर्याप्त तकनीकों एवं ढंगों को, जो सामाजिक सेवा प्रदान करने का माध्यम हैं, भी समुचित स्थान दिया जाना चाहिए।

(4) समाज कार्य शिक्षण के वर्तमान स्वरूप में राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर के उच्च पदों के लिए समाज कार्य व्यावसायिकों को तैयार करने के से बेहतर है कि छोटे एवं तीन-तीन महीने के सर्टिफिकेट कोर्स चलायें जाए , जो उन लोगों को मदद कर सके जो जमीनी स्तर पर पहले से ही कार्य कर रहे हैं।

(5) चूंकि सामाजिक सेवाओं को प्रभावी तरीके से लागू करने के लिए प्रबन्ध के नये तरीके एवं तकनीक जैसे विभिन्न प्रबन्ध कौशल जैसे उद्देश्य द्वारा प्रबन्धन, संचार, मूल्य -लाभ विश्लेषण (cost benefit analysiss) समय प्रबन्धन, सबल पक्ष(SWOT), कमजोरी, अवसर, चुनौतियां, विश्लेषण, मूल्य प्रबन्धन, संघर्ष प्रबन्धन, उद्यमिता विकास, टीम बिल्डिंग, वितरण एवं प्राप्ति अधिकारों के कर्तव्य एवं जिम्मेदारी, PERT-CPM] एवं वित्त प्रबन्धन, वित्तीय परिभाषाओं का विश्लेषण, परियोजना निर्माण, एवं मूल्यांकन, कार्यालय प्रबन्धन आदि विषयों को समाज कार्य शिक्षा में स्थान देना होगा।

(6) वर्तमान समय में अभियान्त्रिकी प्रणाली एवं कम्प्यूटर की महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए इन्हें भी समाज कार्य शिक्षण के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने की आवश्यकता है।

(7) 'कल्याण' शब्द की जगह 'विकास' एवं 'सशक्तिकरण' जैसे विषय को महत्व देना चाहिए।

(8) सेवार्थी को सामाजिक सेवायें प्रदान करने के लिए एवं समुदाय को भी मूल्य आधारित सेवाओं पर बल देते हुए तथा धनोपार्जन के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार के विषय एवं शिक्षा को सामाजिक कार्य शिक्षण में सम्मलित करना चाहिए। परसोला ने (1991-14) ठीक ही कहा है, ''भविष्य के सामाजिक कार्यकर्ताओं को ग्राहकों के भागीदारों सहित अन्य व्यावसायिक एवं राजनीतिज्ञों के साथ कार्य करना पड़ेगा।''

(9) समाज कार्य पाठ्यक्रम सामान्यतया कार्यालयों से बाहर एवं क्षेत्र आधारित तैयार किया जाना चाहिए । समाज के तेजी से बदलते हुए परिवेश में तथा विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा लोक नीति में बदलावों के कारण समाज कार्य डिग्री धारियों के लिए नये रास्ते एवं अवसरों के द्वार खुले हैं। नये क्षेत्रों एवं आयामों के जुड़ने से न केवल समाज कार्य डिग्री धारियों की जिम्मेदारियां बढ़ी हैं बल्कि कई तरह की भ्रान्ति भी पैदा हुई हैं। समाज कार्य पाठ्यक्रम में समय-समय पर बदलाव के बावजूद अनेक नये एवं महत्वपूर्ण क्षेत्र जैसे मानवाधिकार, सामाजिक न्याय, संगठन गत्यात्मकता, भागीदारी प्रबन्धन, हिंसा, पर्यावरण संरक्षण एवं विकास, ग्राहक संरक्षण, चिन्ता

प्रबन्धन, आतंकवाद, प्रति-आतंकवाद एवं शान्ति, कम्प्यूटर तकनीक, सामाजिक आन्दोलन, राजनीतिक ध्रुवीकरण, मतैक्य स्थापना, लोक सम्बन्ध, संचार, सम्बन्ध -स्थापना, लोक- विवाद, आदि विषयों को सम्मिलित नहीं किया जा सका है जिन्हें सम्मिलित करने की आवश्यकता है।

(10) समाज कार्य शिक्षा मुख्य तौर पर विदेशी साहित्य पर आधारित है। अधिकतर किताबें या तो अमेरिकी लेखकों द्वारा लिखी गयी हैं या ब्रिटिश लेखकों के द्वारा । इस सम्बन्ध में नागपाल ने रेखांकित किया है, ''यहाँ तक कि आज भी कोई भी मौलिक किताब भारतीय समाज कार्य पर उपलब्ध नहीं है जिसमें सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन का वर्णन हो।'' यद्यपि इस दिशा में काफी प्रयास हो रहे हैं एवं विशेषकर अंग्रेजी में काफी किताबे लिखी गयी हैं किन्तु ये नाकाफी हैं। विशेषतौर पर तब, जब दूर-दराज के इलाकों में एवं देश के कई भाग में विद्यार्थी राष्ट्रभाषा या क्षेत्रीय भाषा में पुस्तकों की आवश्यकता महसूस कर रहे हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय भाषा पुस्तकों की कमी एक पमुख चुनौती है। नागपाल ने ठीक ही चेतावनी दी है, ''समाज कार्य को व्यवसायीकरण की ओर जाना होगा| इसे एक तरफ प्रभावशाली सांस्कृतिक दर्शन की नींव तैयार करनी होगी वहीं दूसरी ओर लक्ष्य प्रतिवेदित करना पड़ेगा एवं उन्हें बढ़ाना होगा।''

(11) यद्यपि समाज कार्य के तरीके (Methods of social work) जैसे संकुचित शब्दों के स्थान पर एक सामान्य तरीके को विकसित एवं स्थापित किया जा रहा है जो सभी भागों को लाभ पहुंचा सके| फिर भी अभी वैयक्तिक समाज कार्य एवं समूह समाज कार्य पर अत्यधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। भारत जैसे देश में जहाँ जनसंख्या का बड़ा भाग अभी मूलभूत आवश्यकताओं एवं संसाधनों के अभाव में रहने को मजबूर हो | वहाँ सामाजिक बदलाव (social change) के लिए कार्य करना चाहिए जो समाज की नीतियों, योजनाओं, सामाजिक विकास के कार्यक्रमों, समाज कल्याण प्रशासन, (जिन्हें सामाजिक सेवा प्रबन्धन नाम दिया जाना चाहिए, जो नये प्रबन्धन तकनीक द्वारा सामाजिक सेवाओं को प्रभावी तरीके लागू कर सकें) पर ध्यान दिया जाना चाहिए। सामुदायिक संगठन एवं सामाजिक अनुसंधान को अत्यन्त महत्व दिये जाने की जरूरत है जो समस्या के समाधान का सही तरीका एवं तकनीक दे सके। परामर्श (counselling) पर भी अत्यधिक ध्यान देने की आवश्यकता है जो अभी समाज कार्य पाठ्यक्रम के वैयक्तिक समाज कार्य में एक महत्वपूर्ण (बेकार) भाग नहीं है।

(12) समाज कार्य संकाय सदस्यों के लिए प्रशिक्षण का अभाव, समाज कार्य शिक्षकों एवं व्यवसायियों में विचारों के आदान-प्रदान की कमी, व्यवसायिक एवं उद्योग घरानों की कम रूचि, दान दाता संस्थाओं में समाज कार्य के प्रति रूचि का अभाव, समाजकार्य को विश्वविद्यालयी व्यवस्था के अन्तर्गत बढ़ावा देना, समाज कार्य विद्यालयों की स्वायत्ता को समाप्त कर उसे विश्वविद्यालय के एवं विभाग के रूप में स्थापित कर देना (कई विश्वविद्यालय के समाज कार्य विभागों में समाजकार्य को सामान्यतया स्नातक के एक विषय के रूप में शामिल किया गया है जिसमें क्षेत्र कार्य (फील्डवर्क) पाठ्यक्रम एवं प्रयोगात्मक विषयों को शामिल नहीं किया गया है) पाठ्यक्रम के समय विद्यार्थियों द्वारा किये गये फील्डवर्क की पहचान की कमी एवं उपेक्षा आदि समस्याएं दिन प्रतिदिन समाज कार्य विषय की गुणवत्ता को कम कर रहे हैं जिसमें एक आवश्यक एवं गम्भीरता पूर्ण हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

(13) अभिकरण आधारित फील्डवर्क को विभिन्न समाज कार्य विभागों एवं विद्यालयों द्वारा बढ़ावा दिया जाना चाहिये। स्वैच्छिक संगठनों एवं समाज कार्य विभागों/विद्यालयों के बीच सम्मिलित भागीदारी का सर्वथा अभाव है| जिसे दुरूस्त किये जाने की आवश्यकता है। सामान्यतया समाजकार्य विद्यालयों को स्वैच्छिक संगठनों से लाभ उनके विद्यार्थियों को प्रशिक्षण प्रदान करने के रूप में प्राप्त होता है। परन्तु इसे अन्तर-आयामी बनाते हुए समन्वय को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। विभागों के बीच भी पूरी तरह समन्वय होना चाहिए ताकि विद्यार्थियों को

फील्डवर्क अच्छे ढंग से कराया जा सके। प्रत्येक समाज कार्य विभाग या विद्यालय को कम से कम एक मलिन बस्ती को गोद लेना चाहिए।

(14) सामाजिक कार्य अनुसंधान मुख्य रूप से सामाजिक समस्याओं की खोज एवं कुप्रबन्धन से होने वाले प्रभाव तक सीमित हो गया है। प्रभावशाली हस्तक्षेप की मौलिक तकनीकों एवं तरीकों द्वारा समस्याओं के समाधान का सामाजिक कार्य अनुसंधान में सर्वथा अभाव है। यहाँ तक कि सांख्यिकीय विश्लेषण में भी व्याख्या पर अधिक जोर दिया जाता है। बजाय इसके परिणामों का अत्यधिक उपयोग समस्या समाधान में किया जाये। समाज कार्य विद्यार्थियों को नमूने के आकार ¼Sample size), तरीके एवं तकनीकों के बारे में ठीक तरह से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए ताकि वे पूर्ण समग्र (Universe) के परिणाम को ठीक तरह से विश्लेषित कर सकें। कम्प्यूटर का उपयोग भी जरूरी होना चाहिए खास कर तब, जब सामाजिक अनुसंधान की विशिष्ट साइट उपलब्ध है।

(15) मध्यम वर्गीय समाज कार्य विद्यार्थियों का प्रमुख लक्ष्य समाजकार्य पाठ्यक्रम को पूरा करके कोई प्रतिष्ठित नौकरी प्राप्त करना, मुख्यतया अधिकारी बनना होता है । समाज कार्य के विद्यार्थियों की इस तरह की मनोवृत्ति को बदलने की जरूरत है और उन्हें यह बताने की आवश्यकता है कि वे समाज सेवा के लिए तत्पर रहें, विशेष रूप से उनके अन्दर ऐसे मजबूत मूल्यों का संचार होना चाहिए, जिसमें बिना किसी भेद-भाव के सभी के लिये समान अवसर हो, उत्पीड़न, भूख तथा बीमारियों से सुरक्षा तथा मुक्ति प्रदान करने की भावना निहित हो। निश्चित रूप से समाजकार्य विद्यार्थियों की यह व्याख्या कि उन्हें भी बाकी व्यवसायिकों की तरह अच्छा एवं सुविधापूर्ण प्रतिष्ठित जीवन जीने का अधिकार है, को गलत नहीं ठहराया जा सकता। फिर भी उन्हें इस बात पर अधिक ध्यान देना चाहिए कि उनके मन में मानवता को स्थापित करने एवं लोगों को सेवायें देने की भावना निहित हो एवं उनका रूझान सामाजिक सेवा एवं लोगों की विनम्र सहायता की ओर अधिक होना चाहिये।

(16) समाज कार्य के विभागों एवं विद्यालयों के प्रशिक्षणकर्ता को उच्च अधिकारियों एवं राजनीतिज्ञों से अपने विभाग में विभिन्न महत्वपूर्ण अवसरों पर निमन्त्रित कर उनके साथ निकट सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये। राजनीतिज्ञों एवं अधिकारियों को यह बताना चाहिए कि समाज कार्य के विद्यार्थी अन्य सामाजिक वैज्ञानिकों की अपेक्षा समाज के प्रति सकारात्मक कार्यो एवं दायित्वों को ज्यादा अच्छे तरीके से अन्जाम दे सकते हैं। साथ ही वे इस मामले में अन्य सामाजिक विज्ञान विषयों में शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों से अधिक सक्षम सिद्ध हो सकते हैं क्योंकि उन्हें इस तरह के कार्यो को करने का विशेष प्रशिक्षण प्राप्त है। इसका तात्पर्य यह बिल्कुल नहीं है कि समाज कार्य विद्यार्थियों को राजनीतिक गठजोड़ स्थापित करना चाहिए बल्कि उन्हें राजनीतिज्ञों के साथ निष्पक्ष बर्ताव करना चाहिए न कि राजनीतिज्ञों के व्यक्तिगत सिद्धान्तों एवं कार्यो को अन्जाम देना चाहिये।

(17) समाज कार्य विभागों एवं विद्यालयों को अपने पाठ्यक्रम में वास्तविक एवं प्रायोगिक विषयों को समाहित करने के लिए अपने पूर्व विद्यार्थियों की एक सूची तैयार करनी चाहिए तथा समय-समय पर उनकी बैठक बुलानी चाहिए ताकि नवीन सामाजिक अनुभवों एवं सफलताओं को पाठ्यक्रम में जोड़ा जा सके।

2. व्यावसायिक समाज कार्य अभ्यास के स्तर पर

(1) समाज कार्य के स्नातक एवं परास्नातक विद्यार्थी विभिन्न संगठनों में उच्च पदों को पाने में काफी सफल रहे हैं। पर वे व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में पहचान बनाने में बड़ी चुनौती का सामना कर रहे हैं, क्योंकि उनके वरिष्ठ खास करके नौकरशाह सामाजिक कार्यो एवं चुनौतियों की समुचित समझ नहीं रखते। अलग तरीके से सेवा देने की भावना का अभाव और जिस क्षेत्र में वे कार्य कर रहे हैं, उसमे अच्छा करने की भावना का

अभाव और बाकी समाज विज्ञानियों से कुछ अलग करने की योग्यता की कमी ने स्थिति को बद से बदतर बनाया है। स्थिति और भी दयनीय हो जाती है जब बाकी विषयों से आये साथी सामाजिक वैज्ञानिक अपने विषय में दक्षता की वजह से इनसे अच्छा कर लेते हैं। यदि भविष्य में समाज कार्य विज्ञानियों को पहचान बनानी है तो उन्हें बाकी लोगों से अच्छा कार्य करके दिखाना होगा और अपने कार्यो से इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करना होगा कि वे अन्य लोगों से बेहतर एवं अलग हैं। समाज कार्य कर्ताओं को अपनी सामाजिक अभियान्त्रिकी की विशेषज्ञता प्रस्तुत करते हुए अपने लिए नये एवं विशेष क्षेत्र पैदा करना होगा।

(2) समाज कल्याण एवं सामाजिक सेवायें प्रदान करने के कारण समाज कार्य वैज्ञानिक स्वयं को उनके सेवार्थी से अधिक बुद्धिमान समझने जैसी अह्म की समस्या से गुजर रहे हैं। बड़ी संस्थाओं एवं संगठनों में समाज कार्य वैज्ञानिक नौकरशाहों की तरह व्यवहार करने लगे हैं, और उनमें वे तमाम बुराइयां आ गयी है जो साधारणतया नौकरशाहों में पायी जाती हैं। वे लोगों को साथ लेकर चलने एवं उनकी साझीदारी विकसित करने की बजाय उनसे दूरियां बढ़ा रहे हैं। यदि समाज कार्य वैज्ञानिकों को अपनी छवि सुधारनी है तो उन्हें समान भागीदारी की भावना के साथ अपने सेवार्थी के साथ कार्य करना होगा।

(3) सामाजिक कार्यकर्ता एक अलगाव की भावना के साथ कार्य कर रहे हैं यहाँ तक कि अस्पताल, उद्योग, शहरी विकास, ग्रामीण विकास, आदि में भी जहां उन्हें बाकी व्यवसायियों के साथ निकटता एवं मिलजुल कर कार्य करने की आवश्यकता है। वे स्वयं को निरन्तर सामाजिक कार्यों में होने वाले विकास के साथ कदम मिलाने में असमर्थ पाते हैं जिसकी वजह से वे निरन्तर एवं नयी जानकारियों से अपने बाकी विषय के सहयोगियों को अवगत कराने में असफल रहते हैं जो भविष्य में उन्हें सहयोग दिलाने में बाधा उत्पन्न करता है।

(4) सामाजिक कार्यकर्ताओं के अपने विश्वविद्यालय एवं विभागों से सम्बन्ध बिल्कुल नहीं है। सामान्यतया पुराने छात्रों के संगठन की बैठक आदि जैसे दुर्लभ अवसरों पर वे व्यक्तिगत विषयों पर ही बात-चीत करते हैं (जैसे प्रोमोशन, वेतन में बढ़ोत्तरी आदि) और व्यावसायिक मुद्दों जैसे सामाजिक कल्याण प्रशासकों कैडर या राष्ट्रीय समाज कल्याण संगठन जैसे मुद्दों पर बात नहीं करते।

(5) शुरू का उत्साह जो सामाजिक कार्यकर्ताओं में समाज सेवा, समर्पण, अपने कार्य के प्रति लगाव पाया जाता था, उनमें लगातार गिरावट आ रही है और अब सामाजिक कार्यकर्ता एक निश्चित कार्य एवं कार्यालय व्यवस्था की ओर उन्मुख हो रहे हैं। खासकर उन संगठनों में जहां अन्य विषयों से आये सामाजिक वैज्ञानिक कार्य करते हैं। कार्य न करने की संस्कृति जो सामाजिक वैज्ञानिकों में घर करती जा रही है वह एक बहुत बड़ी चुनौती के रूप में सामने आ रही है।

(6) बड़े संगठनों में कार्य करने वाले सामाजिक कार्यकर्ता अपने बाकी सहयोगियों की तरह ही स्वयं की आवश्यकताओं को पूरा करने पर अधिक ध्यान दे रहे हैं, और वे अपने कार्यो को ठीक तरीके से करने की बजाय अपने वरिष्ठ एवं बॉस को खुश करने में सारा वक्त लगाने लगे हैं।

(7) अनेक सामाजिक कार्यकर्ता जो नौकरी पाने में असफल रहे हैं एवं अपनी स्वयं की संस्था बनाकर कार्य कर रहे हैं| परन्तु वे समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों एवं कार्यो का निर्वहन करने की बजाय राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय दानदाता संस्थाओं से धन प्राप्त करने में लगे रहते हैं। वे दानदाता संस्थाओं की शर्तो को पूरा करने एवं उनसे धन प्राप्त करने के लिए बनावटी एवं गलत लेखा-जोखा तैयार करते हैं। इस धन का प्रयोग वे उन कार्यो के लिए नहीं करते जिसके लिए उन्हें प्राप्त करते हैं| इससे भी आश्चर्यचकित करने वाली बात यह है कि सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा संचालित इन संस्थाओं में कभी –कभी अप्रशिक्षित कार्यकर्ताओं की नियुक्ति भी की जाती है।

(8) सभी तरह की सेवाओं जो सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा दी जाती है, उसमें उनके सेवार्थी के प्रति भरोसे एवं विश्वास पैदा करने की अत्यन्त आवश्यकता होती है। यह काफी दिनों के अच्छे चरित्र एवं व्यवहार के द्वारा ही विकसित किया जा सकता है। सामाजिक कार्यकर्ता धन प्राप्त करने के लिए झूठे वादे एवं अन्य प्रकार के गलत कार्य करने की ओर उन्मुख हो रहे हैं जो उनके मुवक्किल के प्रति विश्वास और भरोसे को कम कर रहा है।

3. व्यावसायिक संगठनों के स्तर पर

व्यावसायिक स्तर को कायम रखने के लिए राष्ट्रीय, राज्य एवं जिले के स्तर पर व्यावसायिक संगठनों एवं इनकी शाखाओं का होना आवश्यक है। दुर्भाग्य से 'इण्डियन एसोसिएशन आफ ट्रेंड सोशल वर्कर्स' जो कुछ दिनों के लिए अस्तित्व में थी | वरिष्ठ सामाजिक कार्यकर्ताओं के अह्म की समस्या से अपना अस्तित्व खो चुकी है। भारत में 'दी एसोसिएशन आफ स्कूल आफ सोशल वर्क' जो 70 एवं 80 के दशक में काफी अच्छा कार्य कर रही थी, उसे 'मेडिकल काउन्सिल आफ इण्डिया' एवं 'बार काउन्सिल आफ इण्डिया' की तरह ही संगठन का रूप देना होगा। यह बिल्कुल उचित समय है जब सभी सामाजिक कार्यकर्ता एक संगठन के गठन की दिशा में प्रयासरत हो एवं जल्दी से जल्दी इनका गठन हो सके। यदि आवश्यकता हो तो सभी व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्ताओं को बुलाया जाना चाहिए एवं संसद के समक्ष एक वक्तव्य दिया जा सकता है, ताकि राजनीतिज्ञों का समर्थन हासिल हो सके।

व्यवसाय के बाहर से चुनौतियां

(1) अन्य व्यवसायियों से चुनौतियां

अपनी व्यवसायिक उन्नति के लिए सभी व्यवसाय के लोग अपना अभ्यास क्षेत्र और प्रभाव क्षेत्र बढ़ाने के लिए अधिकाधिक प्रयास करते हैं एवं पारस्परिक व्यवसाय में अपनी भागीदारी अधिक से अधिक सुनिश्चित करने की कोशिश करते हैं। सन् 1948 में जब इसके सेक्शन 49 में श्रम कल्याण अधिकारी की नियुक्ति की व्यवस्था 500 या उससे अधिक की कर्मचारियों की संख्या पर की गयी थी एवं साथ ही उसके लिए सामाजिक कार्य के क्षेत्र में डिग्री/डिप्लोमा की अनिवार्यता ने निर्विवाद रूप से इस पद के लिए समाजकार्य विद्यार्थियों को अधिकृत किया था। लेकिन जब से प्रबन्ध संस्थानों ने कार्मिक प्रशासन में डिग्री देनी शुरू की तब से समाज कार्य विद्यार्थियों के सामने एक नयी समस्या का प्रादुर्भाव हुआ। कुलकर्णी (1994ः25) ने ठीक ही लिखा है''केवल श्रम कल्याण में नौकरी के लिए समाज कार्य डिग्री की वैधानिक आवश्यकता है। लेकिन अब यह भी क्षेत्र इनके लिए नहीं रहा और इनका स्थान प्रबन्ध संस्थान के विद्यार्थी लेने लगे हैं। बाल विकास के क्षेत्र में भी सी.डी.पी.ओ. एवं सेविका जैसे पदो पर गृह विज्ञान विषय इसके प्रतिद्वन्दी के रूप में खड़ा हो रहा है। समाजकार्य के विकल्प के रूप में गृहविज्ञान पर विचार किया जा रहा है। परिवार परामर्शदाता को मनोविज्ञान विषय से चुनौती मिल रही है। यदि समाजकार्य सामाजिक नीति, सामाजिक योजना, सामाजिक न्याय, मानवाधिकार, सामाजिक सुधार आदि के क्षेत्र में विशेष दक्षता एवं तकनीक का विकास कर सके एवं अपनी विशेषज्ञता को समाज के सामने दर्शा सके तो वे समाजकार्य अभ्यास के लिए एक विशेष क्षेत्र को सुरक्षित रखा जा सकता है।

(2) स्वयं सेवी संस्थाओं और महात्मा गांधी की परम्परा को सुरक्षित रखने वाले कार्यकर्ताओं से

सामाजिक सेवा एवं सामुदायिक संगठन के क्षेत्र में समाज कार्य को स्वयं सेवी संस्थाओं से बड़ी चुनौती का सामना कर पड़ रहा है। गांधी जी के पद चिन्हों पर चलने वाले कार्यकर्ता पूरी लगन एवं निष्ठा से सामाजिक सेवा को

अन्जाम दे रहे हैं। इस समय वे लोग व्यवसायिक सामाजिक कार्यकर्ताओं के वेतन आदि पर विरोध जताते है एवं यह बताने की कोशिश करते हैं कि व्यवसायिक सामाजिक कार्यकर्ता उनसे किसी भी मामले में बेहतर नहीं हैं। इस तरह की चुनौतियों का सामना सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा समाज के सामने कुछ अच्छा करके ही किया जा सकता है।

(3) नौकरशाही से

नौकरशाही को प्रशासन में एक स्थिर पद प्राप्त होता है। राजनीति में उनका विशेष प्रभाव होता हैं|उनके पास विशेष तथा महत्वपूर्ण निर्णय लेने का अधिकार होता है | राज्य सरकार के बहुत से ऐसे पद हैं जो सामाजिक कार्य के प्रकृति के हैं जैसे समाज कल्याण अधिकारी, खण्ड विकास अधिकारी, श्रम अधिकारी आदि| सी.डी.पी.ओ. आदि पर चयनित व्यक्ति लोकसेवा आयोग की परीक्षा पास करके आते हैं जो पद पहले सीधे समाज कार्य विद्यार्थियों की सीधी नियुक्ति द्वारा भरे जाते थे। समाज कार्य अभी भी प्राथमिक परीक्षा में एक विषय के रूप में नहीं है एवं मुख्य परीक्षा में इसके प्रावधान को लोक सेवकों के अत्यधिक विरोध का सामना करना पड़ा है। समाज कार्य को तमाम प्रयासों के बावजूद भी भारतीय प्रशासनिक सेवा में एक विषय के रूप में सम्मिलित नहीं किया जा सका है। जो शीर्ष पद सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा प्रतिष्ठापित होते थे वे खाली पड़े हैं| राजनीतिक लाबिंग एवं राजनीतिज्ञों को समझाकर ही इस तरह की समस्या से निजात पाया जा सकता है किन्तु दूरदर्शी रूप से इसका समाधान एक वैधानिक समाजकार्य शिक्षा परिषद के गठन से ही सम्भव है।

5.4 सारांश (Summary)

वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समाज कार्य ने एक व्यवसायिक स्थिति को प्राप्त कर लिया है। किन्तु भारत में आज भी समाज कार्य को एक नवीन व्यवसाय के रूप में देखा जाता है| यद्यपि भारतीय समाज में भी विभिन्न प्रकार की परिवर्तनकारी घटनायें हो रही हैं| जिनके कारण नवीन एवं जटिल समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं जिनके समाधान के लिये विशिष्ट विधियों की आवश्यकता है। यद्यपि समाज कार्य में वैज्ञानिक कार्य प्रणालियों का उपयोग किया जाता है फिर भी आज भी समाज कार्य को अन्य उन व्यवसायों से जो कि व्यक्ति की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का समाधान करने से सम्बन्धित हैं चुनौतियां प्राप्त होती रहती हैं जिनसे कहीं ना कहीं समाज कार्य की व्यवसायिकता प्रभावित हो रही है।

5.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions for practice)

1. समाज कार्य व्यवसाय के अन्तर्गत व्याप्त चुनौतियां का वर्णन कीजिए ?
2. भारत में समाज कार्य व्यवसाय के समक्ष आने वाली चुनौतियों का उल्लेख कीजिये।

5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

1. अहमद रफीउद्दीन मिर्जा, समाज कार्य दर्शन एवं प्रणालियां, शाइनिंग प्रेस लखनऊ, 2004
2. सिंह, सुरेन्द्र, पी.डी. मिश्र, समाज कार्य: इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियां, न्यू रायल बुक कम्पनी लखनऊ, 2010
3. द्विवेदी राकेश, समाज कार्य व्यावसाय: विकास एवं चुनौतियां, न्यू रायल बुक कम्पनी लखनऊ, 2007

4. सिंह मंजीत, व्यावसायिक समाज कार्य का आविर्भाव, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008
5. सिंह मंजीत, समाज कार्य के मूल तत्व, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008
6. सूदन, सिंह कृपाल समाज कार्य: अभ्यास एवं सिद्धान्त न्यू रायल बुक पब्लिकेशन लखनऊ
7. Friedlander, W.A., Concept and Methods of Social Work
8. Friedlander, W.A., Introduction to Social welfare.
9. Khinduka S.K., Social Work in India.
10. Chowdhary, D. Paul, Introduction to Social Work.

इकाई-6

समाज कार्य के क्षेत्र: युवा कल्याण वृद्ध कल्याण

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य (Objective)

6.1 प्रस्तावना (Preface)

6.2 भूमिका (Introduction)

6.3 समाज कार्य के क्षेत्र (Fields of Social Work)

6.3.1 युवा कल्याण (Youth Welfare)

6.3.2 वृद्ध कल्याण (Welfare of Aged)

6.4 सारांश (Summary)

6.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Question for practice)

6.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (Refrences)

6.0 उद्देश्य (Objective)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

1. समाज कार्य के क्षेत्र के रूप में युवा कल्याण की आवश्यकता को समझ सकेंगे।
2. वृद्ध कल्याण के क्षेत्र में समाज कार्य के द्वारा किये जा रहे कार्यों के विषय में अवगत हो सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना (Preface)

समाज कार्य मानव जीवन के विभिन्न पक्षों के कल्याण से सम्बन्धित सेवाएं प्रदान करता है। समाज कार्य की दृष्टि में युवा एवं वृद्ध भी कार्य करने के महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं इसके लिये समाज कार्य संस्थाओं के द्वारा युवाओं एवं वृद्धों के शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक कल्याण के लिये कार्य किया जाता है।

6.2 भूमिका (Introduction)

समाज कार्य के द्वारा युवाओं के लिये रोजगार , मनोरंजन तथा शारीरिक विकास सम्बन्धित कार्यक्रमों का संचालन किया जाता है| जबकि वृद्धों के लिये समाजिक-आर्थिक , मानसिक एवं शारीरिक सुरक्षा से सम्बन्धित कार्यक्रमों का संचालन किया जाता है।

6.3 समाज कार्य के क्षेत्र (Fields of Social Work)

6.3.1 युवा कल्याण (Youth Walfare)

युवा से आशय बचपन और किशोरावस्था की संक्रमण की अवस्था से बाद की अवस्था से है। जिसमें महत्वपूर्ण ढंग से मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक परिवर्तन होते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति का न केवल पूर्ण सांवेगिक विकास होता है, अपितु उसे अपनी भूमिकाओं को पूर्ण रूप से निर्वाह करने का प्रशिक्षण भी प्राप्त होता है। इस अवस्था में व्यक्ति विभिन्न प्रकार के सामाजिक प्रशिक्षणों को प्राप्त करता है बल्कि वयस्कता की स्थिति में स्वायत्त ढंग से बहुत सी नवीन प्रस्थितियों को प्राप्त करता है। युवा अवस्था में व्यक्ति अपने समाज और संस्कृति के अनुरूप भूमिकाओं का निर्वाह करना सीखता है। युवा के रूप में व्यक्ति की अपनी कुछ विशिष्ट आवश्यकताएं होती हैं। जिनकी पूर्ति का प्रयास विभिन्न प्रकार से किया जाता है।

युवा कल्याण के उद्देश्य-

युवा कल्याण के उद्देश्य समाज कार्य के उद्देश्य के अनुरूप हैं| जिसमें युवाओं की आवश्यकताओं और समाज कार्य की आवश्यकताओं में समन्वय की स्थिति देखी जाती है। ये उद्देश्य निम्नवत् हैं-

1. युवाओं को ऐसे अवसर उपलब्ध कराना जिनके द्वारा वह अपने व्यक्तित्व संबंघी तथा शैक्षणिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्षों को उन्नत कर सकें।
2. युवाओं में अनुशासन त्याग और रचनात्मक योगदान की भावनाएं जागृत करना।
3. युवाओं में जीवन के प्रति वास्तविक और प्रबुद्ध दृष्टिकोण विकसित करना जिससे उनमें जागरूक होकर निर्णय लेने की क्षमता का विकास हो सके।

युवाओं के कल्याण की प्रमुख सेवाएं निम्न क्षेत्रों में प्रदान की जाती है-

युवा शिक्षा एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ पर युवा ग्रामीण या नगरीय परिक्षेत्र में प्रभावी ढंग से कार्य कर सकते हैं। समाज कार्य के दृष्टिकोण से युवाओं की शिक्षा इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि व्यक्तिगत या सामूहिक प्रयासों के माध्यम से समुदाय के संसाधनों का उपयोग व्यक्ति के जीवन स्तर में वृद्धि करता है।

युवा शिक्षा से सम्बंधित सेवाओं कें माध्यम से युवाओं के मस्तिष्क के विभिन्न प्रकार की समस्याओं से समायोजन स्थापित करने में मदद किया जाता है जिससे कि उनके अंदर नेतृत्व क्षमता का विकास किया जा सके। युवा शिक्षा से सम्बंधित कार्यक्रमाओं के अन्तर्गत साक्षरता और साक्षरता के पश्चात् शिक्षा, सामाजिक शिक्षा, मनोरंजनात्मक गतिविधियां, हस्तशिल्प, रेडियो, फिल्म, कठपुतली का नृत्य आदि माध्यमों के रूप में कार्य करते हैं। युवाओं के शिक्षा के कार्यक्रमों में अनौपचारिक शिक्षा से सम्बंधित कार्यक्रम होते हैं, जिसमें कि ग्रामीण युवाओं की भागीदारी को सुनिश्चित किया जाता है।

शारीरिक शिक्षा से सम्बंधित सेवाएं

युवा कल्याण के अन्तर्गत उनके स्वास्थ्य में अभिवृद्धि करने के लिए विभिन्न संस्थानों की स्थापना की गयी जैसे ग्वालियर स्थित शारीरिक शिक्षा का राष्ट्रीय कालेज, पटियाला स्थित खेलकूद संस्थान आदि। इसके अलावा स्काउट, एन.सी.सी. आदि संस्थाओं के माध्यम से शारीरिक स्वास्थ्य में वृद्धि हेतु अनेक कार्यक्रम चलाये जाते हैं।

परामर्श से सम्बंधित सेवाएं

युवाओं को अपनी भूमिकाओं के निर्वाह के सम्बंध में विभिन्न प्रकार के निर्देशनों की आवश्यकता होती है। बिना पर्याप्त सलाह और दिशा-निर्देश के युवाओं को अपने परिवार, व्यक्तित्व, समूह, विद्यालय, व्यवसाय और विपरीत लिंग के व्यक्ति के साथ समायोजन में समस्या हो सकती है।

मनोरंजन से सम्बंधित सेवाएं

मनोरंजन युवाओं के जीवन का एक अभिन्न भाग है। मनोरंजन एक ऐसी गतिविधि है। जिसे प्रायः अवकाश के समय किया जाता है जो प्रारम्भिक रूप से इसके द्वारा प्रदान की जाने वाली संतुष्टि तथा आनंद से प्रेरित होती है। मनोरंजन मानसिक एवं शारीरिक परिश्रम करने वाले युवाओं के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है जिससे कि उन्हें अपने कार्य में ऊर्जा का अनुभव होता है और मानसिक विकास का अवसर प्राप्त होता है।

राष्ट्रीय युवा समिति

युवाओं के सम्पूर्ण कल्याण को ध्यान में रखते हुए एक राष्ट्रीय युवा नीति की घोषणा सरकार के द्वारा सन् 1988 में की गयी। युवाओं की जनसंख्या देश की सम्पूर्ण जनसंख्या का लगभग एक तिहाई है। इसी को ध्यान में रखकर युवाआऊं के कल्याण से सम्बंधित विभिन्न कार्यक्रम बनाये गये। इन कार्यक्रमों को युवाआऊं से सम्बंधित नीतियों में विशिष्ट स्थान दिया गया।

6.3.2 वृद्ध कल्याण (Welfare of Aged)

भारत वर्ष में वृद्ध व्यक्तियों को आदर एवं सम्मान से देखा जाता रहा है। वृद्धावस्था में व्यक्ति अपने शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा सामाजिक क्षेत्र में शिथिल पड़ जाता है। उसके रक्तसंचार, पाचन तंत्र मलमूत्र बर्हिगमन आदि की क्रियाएं अशक्त हो जाती है। प्रजनन की क्षमता समाप्त हो जाती है। व्यक्ति हठ और मानसिक प्रतिरक्षाओं के प्रयोग की ओर झुक जाता है। उनमें आत्मविश्वास की भावनाएँ समाप्त होने लगती है। वह आर्थिक प्रयासों में अक्षम होने लगता है और अर्थोपार्जन के लिए अपेक्षित शक्ति के अभाव में आर्थिक कठिनाइयों का शिकार हो जाता है।

भारतीय समाज में वृद्ध व्यक्तियों का स्थान उच्च और आदरपूर्ण रहा है। सामान्यतः इनकी आवश्यकताओं की पूर्ति और इनकी देखभाल परिवार में होती रही है। परिवार की यह एक महत्वपूर्ण भूमिका और उत्तरदायित्व समझा गया है। भारत की संयुक्त परिवार व्यवस्था में वृद्धों को सामाजिक सुरक्षा प्राप्त होता थी साथ ही इनकी पूरा देखभाल तथा सभी आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती थी। परिवार के सबसे बुजुर्ग व्यक्ति की प्रस्थिति सबसे उच्च तथा सम्मानित थी । वे परिवार के बजट पर नियंत्रण रखते थे तथा न केवल परिवार के द्वारा पारिवारिक मामलों में उनका परामर्श लिया जाता था अपितु गांव के मामलों मे भी समुदाय द्वारा परामर्श लिया जाता था।

औद्योगिकरण, नगरीकरण एवं सामाजिक गतिशीलता के कारण उत्पन्न सामाजिक संरचना एवं अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों के कारण संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन प्रारंभ हो गया है। जहाँ एक ओर जनसंख्या , महंगाई,बेरोजगारी तथा गरीबी में निरंतर वृद्धि के कारण एक परिवार अपना निर्वाह अच्छी प्रकार करने की स्थिति में नहीं रहा, वहीं दूसरी ओर समाज में मूल्यों तथा संस्कारों के पतन के कारण परिवार के सदस्यों में वृद्धों के प्रति अपने दायित्व एवं सम्मान की भावना समाप्त हो गयी है । दो पीढ़ीयों के मध्य का अंतर बढ़ता जा रहा है।

व्यक्तिवादी दृष्टिकोण तथा नवीन भौतिकवादी साधनों के पीछे अंधाधुंध दौड के कारण वृद्धों के लिए न तो नयी पीढ़ी के पास समय है न ही उन्हें उनकी परवाह है | ऐसे में उन्हें वृद्धों को स्वयं ही अपनी देखभाल करनी होती है।

वृद्धों का कल्याण

हमारे समाज की यह परम्परा रही है कि पुत्र अपने वृद्ध माता –पिता की देखभाल करते हैं। इस परम्परावादी व्यवस्था के होते हुए भी कुछ परिवार ऐसे होते हैं जहां वृद्धों को पर्याप्त और आवश्यक देखभाल और सहायता नहीं मिल पाती है | इसके कारण वे दुखी और विभिन्न प्रकार की समस्यायों से ग्रस्त हो जाते है। कुछ परिवारों में आर्थिक साधनों के अभाव तथा परस्पर मतभेद के कारण वृद्धों की उपेक्षा होती है। जब वृद्ध शारीरिक तथा आर्थिक रूप से अक्षम होते हैं तो यह समस्या और भी जटिल हो जाती है। परिवार आर्थिक दृष्टि से जितना अधिक संकट में होता है उतना ही बुरा प्रभाव वृद्धों की स्थिति पर पड़ता है।

वृद्धों को दी जाने वाली सेवाओं की व्यवस्थाओं और प्रावधानों की दृष्टि से वृद्धों की समस्या के दो पहलू हैं प्रथा वे सेवाएं और कार्यक्रम जो उन वृद्धों के हितों के लिए आयोजित किए जाएं जो अपने परिवारों में रहते हैं और दूसरी वे सुविधाएँ और सेवाएं जो ऐसे वृद्धों के लिए उपलब्ध हों जो अपने परिवारों से दूर हैं या जिनके अपने परिवार नहीं है।

कुछ देशों में वृद्धों को उचित सम्मान दिया जाता है तथा उनकी उचित देखभाल की जाती है। उदाहरण जापान में 15 सितम्बर को ‘दादा दिवस’ के रूप में मनाया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में मई का मास ‘वृद्ध अमेरिकन माह’ घोषित किया गया है। कनाडा में जून माह ‘वरिष्ठ नागरिक माह’ मनाया जाता है।

वृद्धों को प्राप्त संरक्षण

भारतीय संविधान के अनुच्छेद-41 में वर्णित राज्य के नीतिनिर्देशक सिद्धान्तों के अंतर्गत देश की विभिन्न राज्य सरकारों तथा संघीय क्षेत्रों ने वृद्ध व्यक्तियों को सहायता प्रदान करने की दृष्टि से अपने अपने राज्यों में वृद्धावस्था पेंशन योजनाएं प्रारंभ की हैं तथा इसका संचालन हो रहा है। वृद्ध अभिभावक के भरण-पोषण के संबंध में आपराधिक प्रक्रिया संहिता में अनुच्छेद 125(1) (क) तथा हिन्दू अंगीकरण एवं भरण-पोषण अधिनियम की अनुच्छेद 20(3) में प्रावधान किए गए हैं।

वृद्ध व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय नीति

सन् 1999 में राष्ट्रीय नीति की घोषणा की गई। इस नीति का प्रमुख विषय युवाओं एवं वृद्धों के मध्य सामन्जस्य स्थापित करना तथा वृद्धों की देखभाल करने के लिए परिवारों की क्षमताओं में वृद्धि के लिए औपचारिक तथा अनौपचारिक सहायता व्यवस्था को विकसित करना है। इस नीति में इस बात पर बल दिया गया है कि वृद्ध व्यक्तियों के पास उपलब्ध संसाधनों को एकत्रित किया जाए| ताकि एक तरफ वृद्ध व्यक्तियों के अनुभव एवं विशेषता का लाभ समाज को हो सके तथा दूसरी तरफ वृद्ध व्यक्ति एक सक्रिय जीवन व्यतीत कर सके। इस नीति में निम्नलिखित विषयों पर बल दिया गया -

1. वृद्धावस्था पेंशन योजना के अंततर्गत गैर-सरकारी क्षेत्र को सम्मिलित करते हुए इसके क्षेत्र को बढ़ाया गया।
2. गैर-सरकारी क्षेत्रों की सहायता से वृद्ध व्यक्तियों को छूट युक्त स्वास्थ्य संरक्षण उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है।
3. वरिष्ठ नागरिकों के लिए मानक कर कटौतियों को बढ़ाने की व्यवस्था की गयी।

4. पेंशन कोषों का अनुश्रवण करने के लिए नियामक प्राधिकरण के गठन का प्रस्ताव किया गया।

5. पेंशनधारी व्यक्तियों के लिए आवासीय ऋण प्राप्त करने को सरल बनाया गया।

6. वृद्ध व्यक्तियों को अपने बच्चों द्वारा देखभाल प्राप्त करने के अधिकार को उपलब्ध कराने के लिए विधान बनाने को कहा गया।

वृद्ध व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय परिषद

केन्द्र सरकार द्वारा वृद्धों के लिए बनाई गई नीतियों तथा लाए गए कार्यक्रमों का समय-समय पर पुनरावलोकन करने के लिए इस परिषद् का गठन किया गया।

कार्य समूह का गठन

इस परिषद् के कार्यो को सुचारू रूप से चलाने के लिए एक कार्य समूह का गठन किया गया। इस कार्य समूह के प्रमुख कार्य वित्तीय सुरक्षा, स्वास्थ्य संरक्षण, पोषक आहार, आश्रय, शिक्षा, जीवन और संपत्ति का संरक्षण तथा वृद्ध व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय नीति में वर्णित क्रियात्मक रणनीतियों से भी संबंधित होगे।

वृद्ध कल्याण सेवाएं

वृद्ध एवं असक्त आश्रम

भारत वर्ष में इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास 1840 में किया गया जब बंगलौर की 'फ्रैण्ड इन नीड सोसाइटी' ने वृद्धों और निसहाय व्यक्तियों के लिए सेवाएं आयोजित की । इसके बारे में डेविड सेन्सन असाइलम पूना में खोला गया जहां वृद्धों के लिए भोजन, रहने और कपड़ों की व्यवस्था की गई | इसके बाद कलकत्ता, मद्रास, बंगलौर ,सिकन्दराबाद, सूरत आदि में आश्रम खोला गया। इस समय देश के बडे-बडे नगरों में वृद्ध एवं अशक्त व्यक्तियों के लिए आश्रम खोले गए हैं जिनमें परिवार रहित अथवा परिवार से दुखी वृद्ध और अशक्त रहते हैं। इन आश्रमों में निम्नलिखित सेवाओं का प्रावधान किया जाता हैः

1. वृद्धों की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु खाने, कपड़े, चिकित्सा तथा रहने की व्यवस्था करना।

2. वृद्धों का मनोरंजन तथा मनो-विनोद की सुविधाएं उपलब्ध कराना ताकि वे जीवन को सार्थकता के साथ व्यतीत कर सके। व्यक्तिगत एवं संवेगात्मक समस्याओं से ग्रस्त वृद्धों को मंत्रणा तथा मनोवैज्ञानिक सहायता उपलब्ध कराना ताकि उनके जीवन में आवश्यक सामन्जस्य स्थापित हो सके।

3. वृद्धों के लिए उपयुक्त व्यवसायों में उन्हें लगाना ताकि उनकी कुछ आमदनी भी हो सकें।

4. वृद्धों के घरों के अन्दर धार्मिक एवं राष्ट्रीय कार्यक्रमों का आयोजन करना ताकि वृद्धों में सामूहिक जीवन की उपयोगिता की भावना बनी रहे।

वृद्धावस्था पेंशन योजनाएँ

वृद्धों को सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से राज्य सरकारों द्वारा वृद्धावस्था पेंशन योजनाएँ चलाई जा रही हैं |

पेंशन भोगी वृद्ध

संविधान की धारा 309 में व्यवस्था है कि संघ अथवा राज्यगत विषयों के प्रशासन हेतु नियुक्त कार्मिकों की सेवा शर्तो एंव भर्ती संबधित नियम विधान मंडल द्वारा नियमित की जा सकती है। सरकारें समय-समय पर अपने कार्मिकों की सेवा शर्त जिसमें सेवानिवृत्ति लाभ सम्मिलित हैं, निर्धारित करने के लिए नियमों एवं विनियमों का निर्माण करती रहती हैं| सेवानिवृत्ति के समय सरकारी कर्मचारियों को उपलब्ध सुविधाओं में पेशन योजना एवं अंशदायी भविष्य निधि योजना सम्मिलित है। सर्वोच्च न्यायालय का भी कथन है कि पेंशन कोई कृपा की वस्तु नहीं है। यह कर्मचारी का ठोस अधिकार है पेंशन भूतकाल में प्रदत्त की सेवाओं का भुगतान है। यह उनके लिए है, जिन्होंने अपने जीवन के सुन्दर दिनों में अथक परिश्रम किया इस आश्वासन पर कि वृद्धायु में उन्हें मध्य सागर में छोड़ नहीं दिया जायेगा। सेवानिवृत्त होने वाले व्यक्ति को अर्जित अवकाश के बदलने नकद भुगतान, चिकित्सा भत्ता, निर्धारित दरों अथवा चिकित्सा पर हुए व्यय की प्रतिपूर्ति, अवकाश यात्रा सुविधा अथवा दो वर्षो में एक बार एक मास की पेंशन के बराबर राशि, चश्में का मूल्य जैसी सुविधाएं भी मिलती हैं।

वृद्धावस्था की पात्रता

1. 60 वर्ष या इससे अधिक आयु के सभी व्यक्ति को वृद्धावस्था पेंशन मिलती है जिनकी मासिक आय कम हो।
2. पति-पत्नी में से केवल एक ही व्यक्ति पेंशन पाने का पात्र होता है। इसमें महिलाओं को वरीयता देने का प्रावधान है।
3. किसी अन्य स्रोत से पेंशन प्राप्त होने की दशा में इस पेंशन का लाभ नहीं मिल सकता।

   निराश्रित व्यक्ति उसे माना जाएगा जिसकी आय का कोई साधन नहीं है तथा जिसका 20 वर्ष या उससे अधिक आयु का पुत्र या पौत्र जीवित नहीं है।

किसान पेंशन योजना

इस योजना में ग्रामीण क्षेत्र के निवासियों के लिए पात्रता की जो शर्ते निर्धारित हैं वही शर्ते ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लाभार्थी अब वृद्धावस्था पेंशन के बजाए किसान पेंशन योजना के अंतर्गत लाभान्वित होंगे।

पेंशन न्याय कोष

चतुर्थ वेतन आयोग ने यह सुझाव दिया था कि एक पेंशन न्याय कोष की स्थापना की जाए जिसमें सरकारी कर्मचारी की सेवा अवधि के अनुपात में पेंशन का अनुवर्ती भुगतान किया जाए अथवा सेवानिवृत्ति पर उसकी कुल पेंशन का भुगतान किया जाए। यह कोष कम से कम 10 प्रतिशत ब्याज की गारन्टी देगा जो पेंशन भोगी मासिक भुगतान के रूप में प्राप्त करेगा। कोष का प्रबंध न्याय मण्डल द्वारा किया जाएगा जिसमें ख्याति प्राप्त एवं अनुभवी व्यक्ति सम्मलित होंगे । निवेशों से प्राप्त लाभ प्रत्येक वर्ष पेंशन भोगी को भुगतान किया जाएगा। पेंशन भोगी की मृत्यु के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी पेंशन भोगी के खातें में जमा सम्पूर्ण धनराशि का अधिकारी होगा।

वृद्धों की देखभाल के स्वयंसेवी संगठन-

इन स्वैच्छिक संगठनों में ‘हेल्पेज इण्डिया’ तथा ‘ए केयर इण्डिया’ का विशेषरूप से उल्लेख किया जा सकता है।

हेल्पेज इण्डिया की स्थापना इंग्लैण्ड में 'हेल्प द ऐजेड सोसायटी' के रूप में हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य वृद्धों के हितों का संरक्षण तथा इनकी देखभाल करना है इसके प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं -

युवा पीढ़ी में वृद्धों की आवश्यकताओं के विषय में जागरुकता उत्पन्न करना। इसके लिए हैल्पेज इण्डिया द्वारा विविध प्रकार की प्रतियोगिताओं चित्रकला प्रतियोगिता, वाद-विवाद प्रतियोंगिता, दादा-दादी समारोह इत्यादि का आयोजन किया जाता है।

वृद्धों के लिए घरों, निवास केन्द्रों, वृद्ध वार्डो, इलाज के लिए चलती-फिरती चिकित्सकीय इकाइयों इत्यादि का संचालन करना। नेत्रहीन वृद्धों, शारीरिक रूप से बाधित तथा कुष्ठ रोगों से ग्रस्त वृद्धों एवं मोतियाबिन्द के शिकार वृद्धों के लिए इलाज की व्यवस्था करना तथा इनका पुनर्वासन करना।

'एज केयर इण्डिया' नामक संस्था की स्थापना के उद्देश्य इस प्रकार हैं -

1. वृद्ध पुरुषों एवं स्त्रियों को आवासीय एवं संस्थागत सुविधाओं के माध्यम से शैक्षिक, मनोरंजनात्मक सामाजिक-सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक सेवाएं प्रदान करना।
2. वृद्धों को चिकित्सकीय सुविधायें उपलब्ध कराना।
3. वृद्धों के लिए अंशकालिक रोजगार तथा उनकी आयवृद्धि के कार्यक्रम चलाना।
4. वृद्धों के लिए भ्रमणों एवं यात्राओं की व्यवस्था करना।
5. करों, शुल्कों, सम्पत्तियों, पेंशनों, एवं अन्य आर्थिक तथा वित्तीय आवश्यकताओं के लिए परामर्श सेवाएं उपलब्ध कराना।
6. वृद्धों की समस्याओं के बारे में अध्ययन तथा शोध कराना और अध्ययन केन्द्रों, गोष्ठियों, मनोरंजन समारोहों, रैलियों आदि की व्यवस्था कराना।
7. वृद्धों तथा युवा पीढ़ी के मध्य सामाजिक एकीकरण एवं सद्भावना के लिए उचित वातावरण तैयार करना।

6.4 सारांश (Summary)

व्यक्ति युवा अवस्था में अपने समाज और संस्कृति के अनुरूप भूमिकाओं का निर्वाह करना सीखता है। युवा के रूप में व्यक्ति की अपनी कुछ विशिष्ट आवश्यकताएं होती हैं। जिनकी पूर्ति का प्रयास समाज कार्य के द्वारा किया जाता है। जबकि वृद्धों के लिए घरों, निवास केन्द्रों, वृद्ध वार्डो, इलाज के लिए चलती-फिरती चिकित्सकीय इकाइयों इत्यादि का संचालन किया जाता है। नेत्रहीन वृद्धों, शारीरिक रूप से बाधित तथा कुष्ठ रोगों से ग्रस्त वृद्धों एवं मोतियाबिन्द के शिकार वृद्धों के लिए इलाज की व्यवस्था करना तथा इनका पुनर्वासन करने जैसे कार्य समाज कार्य के द्वारा किये जाते हैं।

6.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions for practice)

1. युवा कल्याण समाज कार्य का एक प्रमुख क्षेत्र है वर्णन कीजिए।
2. समाज कार्य के प्रमुख क्षेत्र के रूप में वृद्ध कल्याण को स्पष्ट कीजिए।

6.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

1. अहमद रफीउद्दीन मिर्जा, समाज कार्य दर्शन एवं प्रणालियां, शाइनिंग प्रेस लखनऊ, 2004
2. सिंह, सुरेन्द्र, पी.डी. मिश्र, समाज कार्य: इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियां, न्यू रायल बुक कम्पनी, लखनऊ, 2010.
3. मदन जी0आर., अमित अग्रवाल, परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन दिल्ली, 2012.
4. द्विवेदी राकेश, समाज कार्य व्यावसाय: विकास एवं चुनौतियां, न्यू रायल बुक कम्पनी लखनऊ, 2007.
5. सिंह मंजीत, व्यावसायिक समाज कार्य का आविर्भाव, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008
6. सिंह मंजीत, समाज कार्य के मूल तत्व, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008

इकाई-7

समाज कार्य के क्षेत्र: बाल, महिला एवं परिवार कल्याण

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य (Objective)

7.1 प्रस्तावना (Preface)

7.2 भूमिका (Introduction)

7.3 समाज कार्य के क्षेत्र (Fields of Social Work)

7.3.1 बाल कल्याण (Child Walfare)

7.3.2 महिला एवं परिवार कल्याण (Women and Family Walfare)

7.4 सारांश (Summary)`

7.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions for practice)

7.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

7.0 उद्देश्य (Objective)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

1. समाज कार्य के क्षेत्र के रूप में बाल कल्याण की आवश्यकता को समझ सकेंगे।
2. महिला एवं परिवार कल्याण के बारे में जान सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना (Preface)

समाज कार्य समाज के विभिन्न वर्गों के लिये कल्याणकारी सेवाएं प्रदान करता है। समाज कार्य की दृष्टि में बालक एवं महिला तथा परिवार कल्याण भी कार्य करने के महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं इसके लिये समाज कार्य संस्थाओं के द्वारा बच्चों , महिला तथा परिवार कल्याण से सम्बन्धित विशिष्ट प्रकार की सेवाओं का संचालन किया जाता है तथा उनके शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक कल्याण के लिये कार्य किया जाता है।

7.2 भूमिका (Introduction)

समाज कार्य के द्वारा बालकों एवं महिला तथा परिवार के लिये मनोरंजन सम्बन्धित तथा शारीरिक विकास सम्बन्धित कार्यक्रमों का संचालन किया जाता है तथा आर्थिक सुरक्षा, मानसिक एवं शारीरिक सुरक्षा से सम्बन्धित कार्यक्रमों के माध्यम से सामान्य एवं विशिष्ट आवश्यक्ताओं की पूर्ति की जाती है।

7.3 समाज कार्य के क्षेत्र (Fields of Social Work)

7.3.1 बाल कल्याण (Child Welfare)

विकास दरअसल मानव शरीर में होने वाले परिवर्तनों का एक क्रम है। जो मानव के जन्म से प्रारम्भ होकर मृत्योपरान्त तक चलता रहता है। मानव कल्याण का अध्ययन मनोविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है उसे प्रारम्भ में बाल मनोविज्ञान तथा बाद में बाल कल्याण कहा जाने लगा। मनोविज्ञान की यह एक अपेक्षाकृत नवीन शाखा है जिसका विकास पिछले पचास वर्षो में एक विकास अवस्था से दूसरी विकास अवस्था में पदार्पण करते समय होते है। इनमें कुछ परिवर्तनों के कारणों का अध्ययन भी होता है, साथ ही साथ यह परिवर्तन कब और किस प्रकार घटित होता है, इसका भी अध्ययन किया जाता है: बाल कल्याण के अर्थ को समझाते हुए विभिन्न मनोविज्ञानियों ने इसकी परिभाषा दी है-

हशलॉक के अनुसार- (1978) ''आज बाल-कल्याण में मुख्यतः बालक के व्यवहार, रूचियों में होने वाले उन (विशिष्ट परिवर्तनों की खोज) पर बल दिया जाता है, जो उसके एक विकासात्मक अवस्था से दूसरी विकासात्मक अवस्था में पदार्पण करते समय होते है| यह परिवर्तन कब होते है, इसके क्या कारण है और यह वैयक्तिक हैं या सार्वभौमिक आदि ज्ञात किया जाता है।''

मूसेन और उनके साथियों (1974) के अनुसार ''आज भी बाल कल्याण के अनेक अध्ययनों का सम्बन्ध आयु प्रवृत्ति की ओर है | यह आयु प्रवृत्ति सम्बन्धी अध्ययन विशेष रूप से चिन्तन समस्या समाधान, सृजनात्मकता, नैतिकता तथा व्यवहार, अभिवृतियाँ और मत आदि क्षेत्रों में किये जाते है। बाल विकास में सर्वाधिक शोध विकास परिवर्तनों में अन्तर्निहित प्रक्रियाओं के मैकेनिज्म पर हो रहे है। अर्थात यह जानने का प्रयास किया जाता रहा है कि विकास परिवर्तन किस प्रकार और किन कारणों से हो रहे है।''

जेस्टन ड्रेबर (1968) क्रो और क्रो (1958) के अनुसार ''बाल-मनोविज्ञान वह वैज्ञानिक अध्ययन है| जो व्यक्ति के विकास का अध्ययन गर्भकाल के प्रारम्भ से किशोरावस्था की प्रारम्भिक अवस्था तक करता है।''

बाल कल्याण की उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बाल कल्याण बालक के गर्भधारण से लेकर उसकी परिपक्वा अवस्था तक उसके शारीरिक, मानसिक, सृजनात्मक, व्यवहार, अभिरूचियाँ तथा मत आदि के विकास का वैज्ञानिक अध्ययन है।

बाल कल्याण में रूचियों के परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है। बाल विकास में रुचियों से सम्बन्धित मुख्यतः निम्न समस्याओं का अध्ययन किया जाता है:-

(1) विकास की विभिन्न अवस्थाओं में रूचियाँ किस प्रकार विकसित होती है?

(2) भिन्न-भिन्न रुचियों का विकास किन-किन अवस्थाओं में और कब प्रारम्भ होता है?

(3) भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में रुचियों के विकास के क्या-क्या कारण हैं?

(4) किन-किन रुचियों का विकास व्यक्तिगत है और किन-किन रुचियों का विकास सार्वभौमिक परिवर्तनों के रूप में होता है।

(5) क्या रुचियों का विकास हमेशा रचनात्मक ही होता है अथवा हास सूचक भी होता है?

(6) विभिन्न रुचियों के विकास की गति और दिशा क्या है?

बाल कल्याण विषय की पद्धति

बाल कल्याण विषय की पद्धति को कई दृष्टिकोणों के आधार पर समझा जा सकता है।

(क) मनोविज्ञान की एक विशिष्ट शाखा के रूप में बाल कल्याण- मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओं में बाल विकास एक महत्वपूर्ण, उपयोगी तथा समाज और राष्ट्र के लिए कल्याणकारी शाखा है| मनोविज्ञान की इस शाखा में गर्भावस्था से लेकर युवावस्था तक मानव के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

(ख) मनोविज्ञान में विशिष्ट उपागम के रूप में बाल विकास विषय - मानव व्यवहारों के अध्ययन के लिए बाल विकास विषय ने कई विशिष्ट उपागम या विचार पद्धतियों का उपयोग किया जाता है इनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं-

(1) प्रयोगात्मक उपागम- इस उपागम के द्वारा बाल कल्याण की विभिन्न समस्याओ के अध्ययन में कार्य-कारण सम्बन्ध को जानने का प्रयास किया जाता है। इस उपागम के द्वारा एक विशिष्ट व्यवहार किस परिस्थिति में उत्पन्न होता है, इसका अध्ययन किया जाता है।

(2) दैहिक उपागम- बाल विकास को एक दैहिकशास्त्र के ज्ञान के द्वारा भी समझा जा सकता है क्योंकि जैविक तथा मानसिक आत्मा एक दूसरे से घनष्ठि रूप से सम्बन्धित होती है। गर्भकालीन शिशु और नवजात शिशुओं के व्यवहार से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान मुख्य रूप से इस उपागम द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

(3) विकासात्मक उपागम- बालक के विकास अवस्था में पहुंचने के दौरान उसमें कुछ नई रूचियों, नई अभिवृत्तियों तथा कुछ नये लक्षणों का विकास या निर्माण होता है। अतः इस प्रकार की समस्याओं को समझने में यह उपागम उपयोगी है।

(4) व्यक्तित्व सम्बन्धी उपागम- बाल कल्याण के इस उपागम में बालक के व्यक्तित्व का अध्ययन इस आधार पर किया जाता है कि प्रत्येक बालक का व्यवहार उस बालक के व्यक्तित्व को किसी न किसी तरह व्यक्त करता है। व्यक्तिव के अध्ययन के आधार पर उसके समायोजन तथा अभिवृत्तियों का अनुमान लगाया जा सकता है।

बाल कल्याण का क्षेत्र और समस्यायें

बाल कल्याण के क्षेत्र में गर्भावस्था से युवावस्था तक के मानव की सभी व्यवहार सम्बन्धी समस्यायें सम्मिलित है। इस अवस्था के सभी मानव व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं के अध्ययन में विकासात्मक दृष्टिकोण मुख्य रूप से अपनाया जाता है। इन अध्ययनों में मुख्य रूप से इस बात पर बल दिया जाता है कि विभिन्न विकास अवस्थाओं में कौन-कौन से क्रमिक परिवर्तन होते हैं। ये परिवर्तन किन कारणों से कब और क्यों होते हैं तथा इन क्रमिक परिवर्तनों में कौन-कौन सी अंतर्निहित प्रक्रियायें हैं आदि। बाल कल्याण का क्षेत्र दिनों दिन बढ़ता जा रहा है।

कारमाइकेल, 1968 ने बाल विकास समस्याओं का उल्लेख करते हुए कहा कि, बाल मनोवैज्ञानिक मुख्यतः निम्न सात समस्याओं का अध्ययन करते हैं -

(1) विकासशील मानव की मौलिक प्रक्रिया और गतिशीलता।

(2) बालक का वातावरण पर प्रभाव।

(3) वातावरण का बालक पर प्रभाव।

(4) विकासात्मक प्रक्रियाओं का क्रमिक समकालीन वर्णन।

(5) विकासात्मक प्रक्रियाओं की दीर्घकालीन प्रणाली द्वारा वर्णन।

(6) व्यक्ति का किसी भी आयु-स्तर पर मापन।

(7) व्यक्ति का सम्पूर्ण पृष्ठभूमि में उसका जेनेटिक लेखा-जोखा प्राप्त करना।

समेकित बाल विकास सेवा योजना (ICDS) – इस योजना को राष्ट्रीय बाल कल्याण योजना में सन् 2000 तक प्राप्त किये जाने वाले लक्ष्यों की प्राप्ति का अब सर्वाधिक सक्षम साधन माना जाता है। इसमें अन्य बातों के साथ-साथ शिशु मृत्यु दर की प्रति 1000 पर 60, प्रति हजार बाल मृत्यु दर में 50 प्रतिशत की कमी करना, 5 वर्ष से छोटे बच्चों के कुपोषण में 50 प्रतिशत की कमी करना आदि है ।

आई०सी०डी०एस० के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :-

1. बच्चों के उचित शारीरिक ,मानसिक, तथा समाजिक विकास की नीव रखना |
2. एक से छ वर्ष तक के बच्चों तथा गर्भवती महिलाओं के आहार एवं स्वस्थ्य में सुधार लाना |
3. बाल विकास को बढावा देने के लिए विभिन्न विभागों की नीति और कार्यों में प्रभावी सामंजस्य स्थापित करना |
4. मृत्यु, रोग,कुपोषण,और स्कूल छोड़ने की प्रवृत्ति को कम करना |
5. पोषण तथा स्वास्थ्य-शिक्षा द्वारा माताओं में स्वास्थ्य और पोषण सम्बन्धी सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता में वृद्धि करना |

आई०सी०डी०एस० के अंतर्गत छ वर्ष के बच्चों तथा गर्भवती महिलाओं विभिन्न उपलब्ध सेवाएँ है -1.पोषाहार एवं स्वास्थ्य सेवाएँ ,2.सहायक सेवाएं ,3. स्वास्थ्य परीक्षण ,4.बीमारियों से मुक्ति 5. शाळा –पूर्व शिक्षा, 6. विशेषज्ञ सुविधाएँ|

भारतवर्ष में 40 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या 16 वर्ष के नीचे के बालकों की है। आर्थिक दशा एवं पारिवारिक क्रियाकलापों में परिवर्तन के कारण बालक के विकास की अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गयी हैं। इन समस्याओं और समस्याग्रस्त बालकों की समस्याओं का निराकरण करने के लिये अनेक संस्थागत और असंस्थागत संस्थाएं कार्य कर रही हैं जो निम्नलिखित हैं :-

1. बाल एवं शिशु विद्यालय।
2. बाल पुस्तकालय।
3. मातृ -शिशु रक्षा केन्द्र।
4. दिवस शिशु पालनगृह।
5. अनाथाश्रम।
6. मूक बधिर विद्यालय।
7. विकलांग आश्रम।

8. बाल चिकित्सालय।

9. बाल परामर्श।

10. बाल अपराधी सुधारगृह।

11. मानसिक रूप से मंद बालकों के लिये विद्यालय।

इन सभी क्षेत्रों में बालक और उसके पर्यावरण में समायोजन की समस्या होती है। वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता इन समस्याओं को सुलझाने में अपनी मद्द करता है।

बाल कल्याण के क्षेत्र में गर्भावस्था से युवावस्था तक के मानव की सभी व्यवहार सम्बन्धी समस्यायें सम्मिलित है। इस अवस्था के सभी मानव व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं के अध्ययन में विकासात्मक दृष्टिकोण मुख्य रूप से अपनाया जाता है। इन अध्ययनों में मुख्य रूप से इस बात पर बल दिया जाता है कि विभिन्न विकास अवस्थाओं में कौन-कौन से क्रमिक परिवर्तन होते हैं। ये परिवर्तन किन कारणों से कब और क्यों होते हैं तथा इन क्रमिक परिवर्तनों मे कौन-कौन सी अन्तर्निहित प्रक्रियायें हैं। बाल कल्याण का क्षेत्र दिनों दिन बढ़ता जा रहा है।

हमारे देश में संविधान के अनु0 39 में बच्चों की दशा सुधारने के लिए विशेष प्रावधान है। इसी प्रकार अनु0 24 में कहा गया है कि 14 वर्ष से कम आयु के किसी भी बच्चे को किसी कारखाने अथवा अन्य किसी संकटमय उद्योग में न लगाया जाय। अनु045 के अनुसार राज्य 14 वर्ष की आयु पूरी होने तक सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में लगभग 150 मिलियन बच्चें है जो भारत की जनसंख्या 17.5 प्रतिशत है। ये बच्चे 0-6 वर्ष की आयु के है। इनमें से बहुत से बच्चे ऐसे आर्थिक और सामाजिक वातावरण में रहते हैं जिसमें बच्चे का शारीरिक और मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। इन परिस्थितियों में निर्धनता, पर्यावरणीय अस्वच्छता, बीमारी, संक्रमण, अपर्याप्त प्राथमिक सेवाएं, पोषण प्रयास शामिल हैं।

मौजूदा स्थिति

हालांकि भारत में शिशु मृत्यु, बाल मृत्यु दर, पोषण स्तर, सहित प्रत्येक महत्वपूर्ण संसूचक में भारी सुधार हुआ है, तथापि बाल के संवर्धन और सुरक्षा सम्बन्धी देश की चिन्ताओं को देखते हुए ये सारे संसूचक अधूरे हैं। इसके अलावा उच्च जनसंख्या वृद्धि भी चिन्ता का विषय है। हालांकि टीकाकरण से रोकी जा सकने वाली बीमारियों और पोषाहार की समस्या के समाधान में भारी सफलता प्राप्त हुई है, तथापि 20 लाख शिशु हर वर्ष मर जाते हैं।

इन समस्याओं से निपटने के लिए भारत सरकार ने वर्ष 1974 में राष्ट्रीय बाल नीति घोषित की है। इस नीति में बच्चों को 'अत्याधिक महत्वपूर्ण परिसम्पत्ति माना गया है। बच्चों के कल्याण तथा विकास के लिए महिला एवं बाल कल्याण विभाग विभिन्न कार्यक्रम चला रहा है।

महिला कल्याण का अर्थ

महिला कल्याण के अंतर्गत वे सब कार्यक्रम आते हैं जो महिलाओं की विशेष समस्याओं के निवारण, उनके पिछड़ेपन को दूर करने तथा उनके आर्थिक एवं सामाजिक स्तर एवं स्थिति को उन्नत करने की दृष्टि से आयोजित किये जाते हैं। आर्थिक पराधीनता से स्वतंत्रता, सामाजिक रूढ़ियों और परम्पराओं से मुक्ति एवं सामाजिक संरचना में परिवर्तन एवं पुनर्गठन, महिला कार्यक्रम के मुख्य पक्ष हैं।

महिला कल्याण के उद्देश्य

महिला कल्याण के दृष्टिकोण से एवं विशेष परिस्थितियों के आधार पर महिलाओं को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। शिक्षित कामकाजी महिलाएं, अशिक्षित ग्रामीण महिलाएं, निम्न-आर्थिक एवं सामाजिक वर्ग की महिलाएँ, शिक्षित नगरीय महिलाएं, असहाय, निर्बल, शोषित और विचलित महिलाएं इत्यादि। इन सब महिलाओं की समस्याओं की प्रकृति और विशेषताएं अलग-अलग है। इसलिए महिला कल्याण कार्यक्रम ऐसे व्यापक और विस्तृत होने चाहिए जो महिलाओं के सम्पूर्ण वर्ग को लाभान्वित कर सकें एवं उनमें स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता एवं सामंजस्य को विकसित करने में सहायक हों।

विशिष्टतया महिला कल्याण के उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

(अ) महिला कल्याण कार्यक्रम का एक मुख्य उद्देश्य उनकी इस खोई स्थिति को फिर से समाज में प्रतिस्थापित करना है जो उनको पुरातन वैदिक काल में प्राप्त थी। उनको आदर, सम्मान तथा उनके अधिकार प्रदान करना है जो हमारे संविधान में अंकित राज्य के निर्देशक सिद्धान्तों का भी एक महत्वपूर्ण अंग है।

(ब) दूसरा उद्देश्य राष्ट्रीय विकास में उनकी भूमिका और स्थान से सम्बद्ध है। महिला कल्याण कार्यक्रम द्वारा उनको विकास और योगदान के ऐसे अवसर उपलब्ध कराना है| जिनके द्वारा वे राष्ट्रीय विकास की मुख्य धारा की आंतरिक अंग बनकर राष्ट्रीय विकास में अपना योगदान दे सके।

(स) जैवकीय दृष्टिकोण से भी महिलाओं की अपनी विशेष स्थिति और समस्याएं होती है। भावी माताओं और बालको को दूध पिलाने वाली माताओं की देख-भाल और सुरक्षा के कार्यक्रम में महिला कल्याण का एक आवश्यक अंग है। इन महिलाओं को उपयुक्त और पर्याप्त आहार, स्वास्थ्य एवं मातृत्व कल्याण सेवाओं को उपलब्ध कराना जिससे उनके स्वस्थ्य और बालकों के स्वास्थ्य स्तर को ऊँचा उठाया जा सके महिला कल्याण का एक मूल लक्ष्य रहा है।

(द) ऐसे अवसर और कार्यक्रमो का आयोजन करना जिनसे न केवल राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी महिलाओं को समान स्तर और समानता प्रदान की जा सके ताकि अंतर्राष्ट्रीय विकास कार्यो में वह महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके| महिला कल्याण को आधुनिक युग में एक प्रगतिशील उद्देश्य समझा जाता है।

महिलाओं की समस्याएँ

हमारे देश में महिलाओं को आज भी विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वे अब भी शैकक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टि से पुरुषों से बहुत पीछे है। कुछ श्रेणियों में महिलाओं की स्थिति अब भी दयनीय बनी हुई है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात लगभग पांच दशक बीत जाने के बाद आम लोगों के बीच महिलाओं के सम्बन्ध में जो धारणाएं हैं उनमें कुछ परिवर्तन हुआ है। यद्यपि मूल स्थिति यथावत है। भारतीय समाज में महिलाओं की मूलभूत समस्याओं को निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. पारिवारिक समस्याएं

हमारा समाज एक पुरुष प्रधान समाज है। भारत में परम्परागत रूप से पितृसत्तात्मक संयुक्त परिवार व्यवस्था पायी जाती है| जिसमें परिवार के पुरुष सदस्यों को तो अनेक अधिकार एवं सुविधाएं प्राप्त है, किन्तु स्त्रियों को उनसे वंचित किया गया है। संयुक्त परिवार व्यवस्था में स्त्रियों की बड़ी दुर्दशा होती है। वे दासी की तरह जीवन

व्यतीत करती हैं| उनका जीवन खाना बनाने, बच्चों को जन्म देने, उनकी देख-रेख एवं परिवार के सदस्यों की सेवा में ही व्यतीत हो जाता है। स्त्री को मनोरंजन का साधन समझा जाता है। शिक्षा एवं बाहरी संसार से अलगाव के कारण वह सार्वजनिक जीवन से अनभिज्ञ बनी रहती है और उसके व्यक्तित्व का समुचित विकास नहीं हो पाता है।

2. वैवाहिक समस्याएं

भारत में विवाह को अनिवार्य माना जाता है, विशेषकर एक स्त्री के लिए | भारतीय स्त्रियों की वैवाहिक समस्याएं भी गम्भीर हैं। स्त्रियों की वैवाहिक प्रस्थिति से सम्बन्धित कुछ समस्यायें हैं-बाल विवाह,तलाक, विधवा पुर्नविवाह का अभाव,दहेज प्रथा,बेमेल विवाह ,अन्तर्जातीय विवाह का अभाव, बहुपत्नी विवाह ,पर्दा प्रथा, दहेज के लिए हत्या, बेमेल विवाह आदि

3. वेश्यावृत्ति

यह एक सामाजक बुराई के रूप में अति प्राचीन काल से प्रचलित है जो स्त्री जाति के लिए अभिशाप है। यौन पवित्रता पर बल, बाल विवाह, विधवा विवाह का अभाव, दहेज, जीवन स्तर को ऊँचा उठाने की इच्छा, गरीबी नारी की आर्थिक पराश्रितता दुखी वैवाहिक जीवन एवं स्त्रियों के लिए रोजगार के अपर्याप्त अवसर आदि ऐसे कारण है जिन्हेंाने इस बुराई को फैलाने में योगदान दिया है।

4. स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं

चूँकि भारतीय समाज एक पुरुष प्रधान समाज है, अतः परिवार में पुरुषों के स्वास्थ्य पर अधिक ध्यान दिया जाता है तथा स्त्रियों के स्वास्थ्य की तरफ समुचित ध्यान नहीं दिया गया है। इसी कारण भारतीय ,स्त्रियों में कुपोषण, खून की कमी, मृत्यु -दर की अधिकता एवं निम्न जीवन-दर आदि समस्याएँ व्याप्त है।

5. शैक्षणिक समस्याएं

भारत में साक्षरता का प्रतिशत बहुत कम है। स्त्रियों में तो यह प्रतिशत और और भी कम है। 2001 में भारत में साक्षरता 65.84 जिसमें महिलाओं की साक्षरता दर 56.01। स्कूल में बालिकायो का निम्न नामांकन , बालिकाओं का बीच में पढाई छोड़ देना , उच्च तथा तकनीकी शिक्षा के मामले में बालिकाओं के साथ भेद –भाव आदि शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं की प्रमुख समस्याएं हैं।

6. आर्थिक पराश्रितता

भारतीय समाज में समान्यतः महिलाओं में आर्थिक स्वालम्बन का अभाव होता है अर्थात वे आर्थिक दृष्टि से पुरुषों पर निर्भर होती हैं या आर्थिक मामलों में उन्हें पुरुषों के निर्देशानुसार कार्य करना पड़ता है। उनके जीवन के समस्त निर्णय अधिकांशतः पुरुषों द्वारा लिए जाते हैं, वह पुरूष उसका पिता,भाई,पति या पुत्र हो सकता है। इसलिए उनका कार्य क्षेत्र घर की दीवारों में ही सिमटकर रह गया है।

7. कामकाजी महिलाओं का शोषण

कामकाजी महिलाओं की एक महत्वपूर्ण समस्या उनकी दोहरी भूमिका है। परिवार के बाहर पति के समान ही तथा कई बार पति से अधिक आर्थिक उत्पादन करने के बावजूद गृहस्थी के समस्त कार्यो का सम्पादन महिलाओं को ही करना पड़ता हैं पुरुष घरेलू कार्यों में हाथ नहीं बंटाता। इस प्रकार घर से बाहर और घर के अन्दर दोहरी भूमिका निर्वाह करने के बाद भी उन्हें पुरुषों के समकक्ष नहीं माना जाता है| उन्हें समाज के द्वितीयक श्रेणी

का नागरिक अर्थात गौण स्थान प्रदान किया जाता है। कार्य स्थल पर भी उन्हें उनकी इच्छानुरूप कार्य नहीं दिया जाता तथा उनका शारीरिक एवं आर्थिक शोषण भी किया जाता है।

8. राजनीतिक समस्याएँ

महिलाओं की समस्याओं में एक प्रमुख समस्या राजनीतिक क्षेत्र में उनका पिछड़ापन है। राजनीतिक क्षेत्र में उनकी सक्रियता न होने के पीछे अनेक कारण महत्वपूर्ण रहे हैं प्रथम तो भारतीय पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं का कार्यक्षेत्र घर की चारदीवारी के अन्दर माना जाता रहा है। अतः घर से बाहर उसकी सक्रियता संभव नहीं रही हैं द्वितीय पुरुष प्रधान भारतीय समाज में पुरुष वर्ग महिलाओं को अपने समकक्ष न मानकर द्वितीय श्रेणी के नागरिक के रूप में मान्यता देता रहा है। अतः शासन एवं राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं का प्रवेश निषिद्ध रहा है। तृतीय महिलाओं में आज भी पुरुषों की तुलना में राजनीतिक जागरुकता बहुत कम है। चतुर्थ आर्थिक स्वावलम्बन के अभाव में आज के चुनावों के खर्च को उठाना उसके लिए संभव नहीं होता है। पांचवा वर्तमान दौर के चुनावों में बढ़ती हुई हिंसा, चरित्र हनन आदि के कारण उनका चुनावों मे भाग लेना संभव नहीं हो पाता। छठे शिक्षा प्रसार के कारण शिक्षित महिलाओं में राजनीतिक जागरुकता बढ़ रही है और वे राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय होना चाहती है, किन्तु पुरुष वर्ग इस क्षेत्र में अपना एकाधिकार मानकर स्त्रियों की सहभागिता को टालना चाहता है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण वर्तमान समय में हमारे देश में राजनीति में महिलाओं के आरक्षण कानून का पास न हो पाना । उल्लेखनीय है कि कई वर्षो में यह विधेयक राजनीतिक क्षेत्र में चर्चा का मुद्दा बना हुआ है किन्तु इस मुद्दे को सभी राजनीतिक दल इस या उस बारे से टालते रहे हैं।

9. महिलाओं के विरुद्ध हिंसा

पूरे जीवन चक्र में महिलाओं के प्रति हिंसा चक्र निम्नवत् रूप में घटित होता है-

जन्म से पूर्व : कन्या भ्रूण हत्या |

शैशवकाल में : बालिका शिशु हत्या; परिवार के सदस्यों से प्यार – दुलार तथा पर्याप्त पोषण नहीं मिलना |

बाल्यकाल : बाल विवाह, लिंग विच्छेदन, अपरिचित तथा परिवार के सदस्यों द्वारा यौन शोषण, पर्याप्त पोषण तथा स्वस्थ्य सुविधा नही मिलना, बाल मजदूरी, बाल वेश्यावृत्ति, ।

किशोरावस्था: डेटिंग तथा कोर्टशिप ,हिंसा, काम करने के जगहों पर यौन शोषण, बलात्कार, प्रताड़ित करना, वेश्यावृत्ति के किये मजबूर करना, तेज़ाब फेकना, ।

वयस्क अवस्था: वैवाहिक बलात्कार, दहेज के कारण शोषण और हत्या, मनोवैज्ञानिक शोषण, काम करने के जगह पर यौन शोषण, बलात्कार।

बुढ़ापा: विधवाओं का शोषण, परिवार के सदस्यों द्वारा शारीरिक ,मानसिक तथा आर्थिक शोषण|

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय नारी आज भी विभिन्न प्रकार की पारिवारिक, वैवाहिक, सामाजिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं से ग्रस्त है। इन समस्याओं से मुक्ति के बिना समानता के इस युग में स्त्रियों को उनकी सच्ची प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हो सकती। स्त्रियों की स्थिति को सुधारने एवं उन्हें समाजिक न्याय दिलाने हेतु अनेक सुधार आंदोलन हुए है और सरकारी व गैर-सरकारी स्तर पर कल्याण कार्य भी किए गए हैं।

संवैधानिक प्रयास

स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय महिलाओं की स्थिति सुधारने और राष्ट्रीय विकास में उनकी पूरी भागीदारी के लिए बहुत से कानून बनाये गए। यह कानून वास्तव में सामाजिक कुरीतियों को दूर करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम थे। इनमें से निम्नलिखित प्रयास उल्लेखनीय हैं:-

1. विधवा पुनर्विवाह अधिनियम- 1856।
2. सती प्रथा को अवैध घोषित करने के लिए बंगाल सती अधिनियम 1829।
3. विशेष विवाह अधिनियम ,1954।
4. भारतीय तलाक अधिनियम , 1869(संशोधन, 2001)।
5. हिंदू विवाह अधिनियम, 1955।
6. विवाहित महिलाओं का सम्पत्ति अधिनियम, 1974।
7. हिन्दू दत्तक ग्रहण और भरण पोषण अधिनियम , 1956 (वयक्तिक क़ानून संशोधन अधिनियम, 2010)|
8. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956, (संशोधन 2005)।
9. बाल विवाह निरोध अधिनियम, 1929।
10. हिन्दू स्त्रियों की सम्पत्ति अधिकार अधिनियम, 1937।
11. दहेज निरोधक अधिनियम 1961,(संशोधन - 1976)।
12. दहेज निरोधक (सुधार)अधिनियम, 1984|
13. जन्म पूर्व लिंग निदान तकनीकी (नियमन व दुरुपयोग-निषेध) अधिनियम 1994|
14. महिलाओं तथा कन्याओं का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम , 1956|
15. अनैतिक व्यापार (निरोधक) अधिनियम 1986|
16. घरेलू हिंसा अधिनियम ,2005 |

भारतीय संविधान के निम्नलिखित प्रावधान महिलाओं के प्रति किए जा रहे भेद-भाव को समाप्त करते हैं और उन्हें संरक्षण उपलब्ध कराते हैं -

1. अनु0 14 के अनुसार भारतवर्ष के समस्त नागरिक (महिलाओं सहित) कानून की दृष्टि में समान है तथा उन कानूनों से समान संरक्षण पाने से वंचित नहीं किया जा सकता है।

2. अनु0 15 (3) में यह व्यवस्था की गई है कि समता का प्रावधान महिलाओं एवं बच्चों के लिए किए गये विशिष्ट प्रावधानो के लिए किए जाने के मार्ग में बाधक नहीं होगा।

3. अनु. 16 (2) में प्रावधान किया गया है कि राज्य के अधीन किसी भी सेवायोजन या पद के संबंध में केवल, धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्धव, जन्म स्थान, निवास या इनमें से किसी भी आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा और न ही उसके साथ भेदभाव किया जाएगा।

स्वतंत्रता के पूर्व एवं स्वतंत्रता के पश्चात् महिलाओं के संरक्षण एवं विकास से संबंधित अनेक प्रावधान किए गए हैं जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

1. नागरिकता का अधिकार

नागरिकता अधिनियम, 1951 के अंतर्गत उन समस्त व्यक्तियों (पुरूषों एवं महिलाओं दोनों) को जन्म से (अनु0 31) अथवा पंजीकरण कराकर (अनु0 5) अथवा वंश (अनु0 4) द्वारा भारतीय नागरिकता उपलब्ध करायी जाती है। पुरुष एवं महिलाएं दोनों को ही अपनी नागरिकता बदलने का अधिकार है।

2. वोट देने एवं चुनाव लड़ने का अधिकार

जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में पुरुषों एवं महिलाओं दोनों को ही वोट देने तथा चुनाव लड़ने का समान अधिकार दिया गया है। (अनु0 19)

3. अनैतिक व्यापार के कारण होने वाले शोषण में महिलाओं को संरक्षण

भारतीय दंड सहिता, 1860 के अंतर्गत अवैध प्रयोग के उद्देश्यों एवं अवैधानिक रूप से नाबालिग लड़कियों को ले जाना (अनु0 366 ए), 21 वर्ष से कम आयु वाली नाबालिग लड़कियों का अवैध प्रयोग करना एवं अवैधानिक रूप से बाहरी देशों को भेजना (अनु0 366बी) किसी व्यक्ति को दासता के रूप में खरीदना अथवा बेचना (अनु0 370), 18 वर्ष से कम आयु की नाबालिग लड़कियों को वेश्यावृत्ति के लिए बेचना (अनु0 372), 18 वर्ष से कम आयु की नाबालिग लड़कियों को वेश्यावृत्ति के लिए खरीदना (अनु0 373) दण्डनीय अपराध है। अनैतिक व्यापार अधिनियम (निरोध) 1986 की अनु05 में यह व्यवस्था की गई है कि किसी व्यक्ति को वेश्यावृत्ति के लिए प्राप्त करना, लगाना अथवा ले जाना दण्डनीय अपराध है। मुम्बई देवदासी (संरक्षण) को दैवी एवं देवताओं को समर्पित करना दण्डनीय अपराध है (अनु.3)।

4. सेवायोजन में भेदभाव न किया जाना तथा समान कार्य हेतु समान वेतन दिया जाना

समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 की अनु. 5 में यह व्यवस्था की गई है कि कोई सेवायोजक कानून के अंतर्गत प्रतिबंधित अथवा निषिद्ध कार्य को छोड़कर समान एवं समान प्रकृति वाले कार्य को करने वाले पुरुषों एवं महिलाओं के बीच भेदभाव नहीं करेगा।

5. सामाजिक सुरक्षा लाभों का प्रावधान

कर्मकार पूर्ति अधिनियम, 1923 महिलाओं एवं पुरूष दोनों पर ही लागू है तथा इसके अंतर्गत यदि कर्मकार काम के दौरान घायल होता है अथवा व्यावसायिक बीमारी का शिकार हो जाता है तो उसे सेवायोजक द्वारा क्षतिपूर्ति प्रदान की जाएगी।

उपरोक्त सभी सुविधाओं एवं कानूनों का लाभ संस्था के माध्यम से वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता के द्वारा महिला सेवार्थियों को प्रदान किया जाता है। इनका लाभ लेने के लिए कार्यकर्ता के द्वारा समय-समय पर महिला सेवार्थियों को परामर्श एवं मार्ग दर्शन भी प्रदान किया जाता है।

परिवार कल्याण

परिवार मानव जीवन की मूलभूत इकाई है वर्तमान सामाजिक परिवर्तन की धारा ने इसको भी चपेट में लिया है और इसके अनेक कार्य अन्य संस्थाएं करने लगी हैं। परम्परागत परिवारों में पूर्व निर्धारित मूल्यों का वहन आज भी होता है| परन्तु अब उनमें उतनी आस्था नहीं रह गयी जिसके कारण सदस्यों के पारस्परिक सामंजस्य एवं कार्य पद्धति में रूकावटें उत्पन्न हो गयी हैं। सामाजिक वैयक्तिक समाज कार्य ऐसी स्थिति में परिवारों की सहायता

सदस्यों की समायोजन सम्बन्धी समस्याओं में करता है। कार्यकर्ता अनेकानेक चिकित्सकीय प्रविधियों के आधार पर सदस्यों की स्थिति एवं भूमिका को समझने एवं उसके अनुसार कार्य करने के लिए प्रेरित करता है।

7.4 सारांश (Summary)

बालक किसी भी समाज का भविष्य होते हैं इसलिये उनके विकास का उत्तरदायित्व भी समाज पर ही होता है। कुछ विशिष्ट वर्ग के बालकों की मानसिक, शारीरिक एवं भावनात्मक विकास की आवश्यकतायें पूरी नहीं हो पाती हैं। कुछ बालकों को कोमल अवस्था में ही कठोर श्रम भी करना पडता है। जिससे उनका सम्पूर्ण विकास बाधित हो जाता है। अतः समाज कार्य के द्वारा बालकों की विशिष्ट आवश्यकताओं एवं समस्याओं को समझते हुये विभिन्न प्रकार की सेवायें प्रदान की जाती हैं। जिनमें संरक्षण प्रदान करना, आश्रय प्रदान करना तथा शारीरिक विकास के लिये सेवाओं का संचालन किया जाता है। इसी प्रकार महिला भी समाज का एक विशिष्ट वर्ग होती हैं तथा परिवार के संचालन का भी उत्तरदायित्व महिलाओं पर ही होता है इस रूप में उनकी आवश्यकतायें भी अलग एवं विशिष्ट होती हैं। अतः समाज कार्य के द्वारा महिलाओं की विशिष्ट सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थिति के अनुरूप कल्याणकरी सेवाओं का संचालन समाज कार्य के द्वारा किया जाता है।

7.5 अभ्यासार्थ (Questions for practice)

1. समाज कार्य के क्षेत्र के रूप में बाल कल्याण के महत्व को बताइए।
2. महिला एवं परिवार कल्याण के अन्तर्गत महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक विकास हेतु चलाये जा रहे कार्यक्रमों पर प्रकाश डालिये।

7.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

1. अहमद रफीउद्दीन मिर्जा, समाज कार्य दर्शन एवं प्रणालियां, शाइनिंग प्रेस, लखनऊ, 2004.
2. सिंह, सुरेन्द्र, पी.डी. मिश्र, समाज कार्य: इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियां, न्यू रा ॅयल बुक कम्पनी लखनऊ, 2010.
3. मदन जी0आर., अमित अग्रवाल, परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन दिल्ली, 2012.
4. द्विवेदी राकेश, समाज कार्य व्यावसाय: विकास एवं चुनौतियां, न्यू रा ॅयल बुक कम्पनी लखनऊ, 2007.
5. सिंह मंजीत, समाज कार्य के मूल तत्व, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2008
6. भारत 2011, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली।

इकाई-8

समाज कार्य के क्षेत्र: श्रम कल्याण

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य (Objective)

8.1 प्रस्तावना (Preface)

8.2 भूमिका (Introduction)

8.3 समाज कार्य के क्षेत्र (Fields of Social Work)

8.3.1 श्रम कल्याण (Labour Welfare)

8.4 सारांश (Summary)

8.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Question for practice)

8.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (Refrences)

8.0 उद्देश्य (Objective)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप

1. समाज कार्य के क्षेत्र के रूप श्रम कल्याण की आवश्यकता को समझ सकेंगे।
2. भारत सरकार के श्रम कल्याण कार्यों को जान सकेंगे|

8.1 प्रस्तावना (Preface)

समाज कार्य मानव जीवन के विभिन्न पक्षों के कल्याण से सम्बन्धित सेवाएं प्रदान करता है। समाज कार्य की दृष्टि में श्रम कल्याण भी कार्य करने का महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं |इसके लिये समाज कार्य संस्थाओं के द्वारा श्रमिकों के शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक कल्याण के लिये कार्य किया जाता है।

8.2 भूमिका (Introduction)

समाज कार्य के द्वारा श्रमिकों के लिये रोजगार , मनोरंजन तथा शारीरिक विकास सम्बन्धित कार्यक्रमों का संचालन किया जाता है तथा उनके लिये आर्थिक, मानसिक एवं शारीरिक सुरक्षा से सम्बन्धित कार्यक्रमों का भी संचालन किया जाता है।

8.3 समाज कार्य के क्षेत्र (Fields of Social Work)

8.3.1 श्रम कल्याण

श्रम-कल्याण अत्याधिक व्यापक शब्द है और इसमें श्रमिक समुदाय के आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक अथवा नैतिक लाभ से सम्बन्धित विविध प्रकार के कार्य सम्मिलित हैं। भारत के राष्ट्रीय श्रम-आयोग (1969) के अनुसार , ‘‘ श्रम कल्याण का विचार आवश्यक रूप से प्रगतिशील है , जिसका अर्थ देश में से समय–समय पर , यहाँ तक कि एस देश में ही उसके मूल्यांकन , सामाजिक संस्थाओं, ओद्योगिकरण की मात्रा व सामाजिक तथा आर्थिक विकास के स्तर से भिन्न- भिन्न होता है | ’’इस प्रकार श्रम कल्याण शब्द को एक निश्चित सीमा में नहीं बाँधा जा सकता |

श्रम कल्याण की परिभाषा

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन की रिपोर्ट में कहा गया है, ‘‘श्रम कल्याण से आशय ऐसी सेवाओं तथा सुविधाओं के अर्थ में समझा जा सकता है जो कारखाने के अंदर या निकटवर्ती स्थानों में स्थापित की गयी हो ताकि उनमें काम करने वाले कर्मचारियों को स्वस्थ तथा शक्तिपूर्ण परिस्थितियों में अपना कार्य कर सकें और अपने स्वास्थ्य तथा नैतिक स्तर को उँचा उठाने का कार्य कर सकें।”

सर एडवर्ड पेंटन के अनुसार “श्रम कल्याण का अर्थ श्रमिकों को सुख, स्वास्थ्य और समृद्धि के लिए उपलब्ध की जाने वाली संस्थाओं से है | ”

सामाजिक विज्ञानों के विश्व कोष के अनुसार “श्रम कल्याण का अर्थ क़ानून औद्योगिक प्रथा और बाजार की दशाओं के अतिरिक्त मालिकों द्वारा वर्तमान औद्योगिक व्यवस्था के अंतर्गत श्रमिकों के काम करने और कभी कभी जीवन निर्वाह और सांस्कृतिक दशाओं को उपलब्ध करने के एच्छिक प्रयत्न हैं |”

इन परिभाषाओं से यह ज्ञात होता है कि अन्तर्गत समाज कल्याण की निम्नलिखित विशेषताएं समाहित हैं :-

1. श्रम कल्याण मजदूरी के अतिरिक्त दिया जाने वाला लाभ है|
2. श्रम कल्याण के अंतर्गत वे सुविधायें नहीं आती जो कानूनन उन्हे देना अनिवार्य है |
3. श्रम कल्याण मजदूरों को उनका जीवन स्तर ऊंचा उठाने और उनके सर्वांगीण विकास के लिए उपलब्ध की जाने वाली सुविधाओं और सेवाओं को कहते हैं |
4. ये सुविधायें श्रमिकों , सेवायोजको तथा समाजसेवी संस्थाओं द्वारा प्रदान की जाती हैं |

श्रम कल्याण के अंतर्गत श्रमिकों के आवास की समस्या, स्वास्थ्य एवं शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएं, आहार सुविधाएं (कैंटीन को भी सम्मिलित करते हुए), आराम तथा खेल-कूद, की व्यवस्था, सहकारी समीतियाँ, बाल-क्रीड़ा स्कूल, स्वच्छता की व्यवस्था, वेतन सहित अवकाश, मालिकों द्वारा अकेले ऐच्छिक रूप से अथवा श्रमिकों के सहयोग से चलाई गई सामाजिक बीमा व्यवस्था (जिसमें बीमारी तथ प्रसूति सुविधा योजना) प्राविडेण्ट फण्ड और पेंशन इत्यादि को भी सम्मिलित कर सकते हैं।

श्रम कल्याण कार्यों का वर्गीकरण

कल्याण सम्बन्धी कार्यो का क्षेत्र काफी व्यापक है। इन कार्यो को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है-

स्थान के आधार पर वर्गीकरण –

डा० बउटन ने स्थान के आधार पर श्रम कल्याण कार्यों को दो वर्गों में बांटा हैं –

(क) कारखाने के भीतर के कल्याण कार्य , जो कि निम्नलिखित है –

-श्रमिकों की वैज्ञानिक ढंग से भर्ती करना |

- विभिन्न कारखानों में विशिष्ट कार्यों का प्रशिक्षण |

- स्वच्छता, प्रकाश तथा वायु का प्रबंध करना |

- दुर्धटनाओं की रोकथाम का प्रबंध करना |

- कैंटीन ,थकावट दूर करने तथा आराम की व्यवस्था करना |

(ख) कारखाने के बाहर के कल्याण कार्य, जो निम्नलिखित हैं –

-सस्ता एवं पौष्टिक आहार की व्यवस्था करना |

- श्रमिकों के मनोरंजन की व्यवस्था करना |

- शिक्षण की व्यवस्था करना जैसे कि प्रौढ़ शिक्षा , सामाजिक शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा आदि|

- निःशुल्क उपचार की व्यवस्था करना |

प्रबंध के आधार पर श्रम कल्याण कार्यों को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है -

(1) वैधानिक कल्याण कार्य के अन्तर्गत वे कार्य आते हैं जिनको सरकार के द्वारा बनाए गए कुछ कानूनों के कारण मालिकों को करना पड़ता है। ये कार्य की दशाओं, कार्य के घण्टे, प्रकाश, स्वास्थ्य एवं सफाई आदि से सम्बन्धित हो सकते है। श्रमिकों के कल्याण के लिए इस प्रकार का राज्य द्वारा हस्तक्षेप दिन-प्रतिदिन सब देशों में अधिक होता जा रहा है।

(2) ऐच्छिक कल्याण कार्यो के अन्तर्गत वे कार्य आते हैं जो कि मालिक अपने श्रमिकों के लिए सम्पादित करते हैं। प्रत्यक्ष रूप से तो यह कार्य परोपकार के दृष्टिकोण से होते हैं, परन्तु यदि हम इनकी गहराई में जायें तो पता चलेगा कि इस प्रकार के कार्यो पर धन व्यय करना उद्योग में निवेश माना जाना चाहिये, क्योंकि कल्याण कार्य न केवल श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि करते हैं, अपितु संघर्ष उत्पन्न होने की सम्भावना को भी बहुत कम कर देते हैं। ऐच्छिक कल्याण कार्य वाई0एम0सी0ए0 (ल्ण्डण्ब्ण्।ण्) जैसी कुछ सामाजिक संस्थाओं द्वारा भी किये जाते हैं।

(3) पारस्परिक कल्याण कार्य श्रमिकों द्वारा किये गए वे कार्य हैं, जो कि वे परस्पर सहयोग से अपने कल्याण के लिए करते हैं। इस उद्देश्य से श्रमिक संघ श्रमिकों के कल्याण के लिए अनेक कार्य करते हैं।

प्रदान करने वाले दल के आधार पर –

- सेवायोजकों द्वारा मजदूरी के अलावा दिए जाने वाला लाभ जैसे- निवास ,चिकित्सा,यातायात आदि की सुविधा |

- प्रशासन द्वारा दिया जाने वाला कल्याण कार्य |

- श्रमिक संघों द्वारा किया जाने वाला कल्याण कार्य |

- समाज की अन्य संस्थाओं द्वारा किया जाने वाला कल्याण कार्य |

कल्याणकारी कार्यो का उद्देश्य

कल्याणकारी कार्यो का उद्देश्य आंशिक रूप से मानवीय, आंशिक रूप से आर्थिक एवं आंशिक रूप से नागरिक है। मानवीय इस दृष्टिकोण से है कि वह श्रमिकों को उन अनेक सुविधाओं को प्रदान करता है जिनकी वे स्वयं व्यवस्था नहीं कर सकते। आर्थिक इस दृष्टिकोण से है कि यह श्रमिको की कार्य-क्षमता में वृद्धि करता है और झगड़े की सम्भावनाओं को कम कर देता है और श्रमिकों को सन्तुष्ट रखता है। नागरिक इस दृष्टिकोण से है कि यह श्रमिकों में सम्मान और उत्तरदायित्व की भावना जाग्रत कर देता है और उनको अच्छे नागरिक बनाने में सहयोग देता है।

भारत में श्रम कल्याण कार्यो की आवश्यकता

श्रम कल्याण की आवश्यकता तथा उसके महत्व पर समस्त सभ्य संसार में बराबर जोर दिया जाता रहा है। भारत में इनकी आवश्यकता का अनुमान श्रमिक वर्ग की दशाओं को देखने से ही लगाया जा सकता है। उनको अस्वस्थ वातावरण में अधिक घण्टों तक काम करना पड़ता है और फिर भी थकावट को दूर करने का कोई साधन नहीं है। ग्रामीण समाज तथा अपने परिवार से दूर उनको नगरों के अपरिचित एवं दूषित वातावरण में पटक दिया जाता है, जहाँ पर वे मद्यपान, जुआ और दूसरी सामाजिक बुराइयों के शिकार हो जाते हैं। श्रम कल्याण कार्य इन सामाजिक बुराइयों को दूर करने में सहायक हो सकते है। इस प्र्रकार पश्चिमी देशों की अपेक्षा भारत में कल्याणकारी कार्यो की महत्ता अधिक है। कल्याण कार्यो का निस्सन्देह श्रमिकों की मानसिक स्थिति पर बहुत लाभप्रद प्रभाव पड़ता है जो कि औद्योगिक शान्ति स्थापित करने में बहुत सहायक सिद्ध होता है। जब श्रमिक यह अनुभव करता है कि मालिक व सरकार उसे दिन-प्रतिदिन के जीवन को हर प्र्रकार से सुखी बनाना चाहते हैं, तो उसकी असन्तोष और विरोध की प्रवृत्ति धीरे-धीरे लुप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त, मिलों में किया जाने वाला कल्याण कार्य मिल की नौकरी को आकर्षक बना देता है और उसमे ंएक स्थायी श्रमिक वर्ग उत्पन्न हो जाता है। श्रम कल्याण कार्यो में श्रमिकावर्त तथा अनुपस्थिति के प्रश्न पर अब कोई वाद-विवाद नहीं है और संसार के समस्त देशों में इसको औद्योगिक प्रबन्ध के एक अभिन्न भाग के नाते मान्यता प्रदान की जा चुकी है जो कि वर्तमान समय में मानवीय पहलू को अधिक महत्व प्रदान करता है। यह श्रमिकों की उत्पादन शक्ति में वृद्धि कर देता है तथा उनमें आत्मविशवस और चेतना की नई भावना प्रभावित करता है।

श्रम कल्याण कार्यो का महत्त्व या उपयोगिता :-

1. औद्योगिक संबंधो को मधुर बनाने में सहायक | जब श्रमिकों को इस बात का अनुभव होने लगता है कि राज्य और सेवायोजक उनने कल्याण के लिए विभिन्न योजनाये क्रियान्वित कर रहे हैं तो उनके मन में एक स्वस्थ्य भावना पैदा होती है |

2. श्रमिकों का कार्य में रुचि का बढ़ने में सहायक | जब श्रमिकों को यह लगता है कि वे भि उद्योग का हिस्सा हैं तो उनकी कार्य में रूचि बढ़ जाति है |

3. श्रमिकों की कार्य क्षमता में वृद्धि करने में सहायक | कल्याण कार्यक्रमों से उनका मानसिक और बौद्धिक विकास होता है जिससे उनकी कार्य क्षमता बढती है |

4. श्रमिकों के स्वस्थ्य आदर्श चरित्र का विकास में सहायक| श्रम कल्याण कार्यों जैसे-कैन्टीन की व्यवस्था, स्वस्थ्य एवं संतुलित भोजन से जहां एक ऊर उनके स्वास्थ्य का विकास हित है वहीँ दूसरी ओर स्वस्थ्य मनोरंजन के द्वारा उनकी बुरी आदतें दूर होती हैं |

5. श्रमिकों की विभिन्न समस्याओं का समाधान करता है | कल्याण कार्यों से शश्रमिकों विशेषकर प्रवासी श्रमिकों की सस्ता एवं अच्छा आवास , भोजन तथा उपचार की सुविधाएं उपलब्ध हो जाती हैं |

6. कार्यों को प्रभावी बनाने में सहायक | जिन औद्योगिक संस्थानों में कल्याण कार्य चलाए जातेहैं वहां सेवाएं अधिक आकर्षक और प्रभावी हो जाती हैं जिससे श्रामिकों की कार्य क्षमता बढ़ जाति हैं|

7. श्रम संगठन को समुद्रशक्ति बनाने में योगदान देता है | पश्चिमी देशों की तरह भारत के श्रमिक संघ न तो संगठित हैं न ही वित्तीय रूप से मजबूत अतः ऐसी दशा में श्रमिकों के कल्याण के लिए कल्याण कार्यों को करना आवश्यक हो जाता है

8. अशिक्षित श्रमिकों को शिक्षित तथा अपने अधिकारों की प्रति जागरूक बनाने में सहायक|

9. श्रमिकों की उन्नति से राष्ट्र की समृद्धि होती है |

10. श्रम कल्याण को औद्योगिक प्रशासन का अंग बनाने में सहायक |

भारत सरकार के श्रम कल्याण कार्य

श्रम कल्याण के क्षेत्र में सरकारी नीति की एक उल्लेखनीय विशेषता यह रही है कि श्रम कल्याण से सम्बन्धित मामलों का उपयुक्त स्तर बनाये रखने के लिए उन्हें अधिकाधिक कानून की परिधि में लाया गया है। कारखाना अधिनियम 1948, खान अधिनियम 1952, बागान श्रम अधिनियम 1959, भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियम 1934, व्यापार पोत अधिनियम, 1958, मोटर परिवहन कर्मचारी अधिनियम 1961, बीडी श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम, 1976 तथा ठेका श्रमिक (नियमन तथा उन्मूलन) अधिनियम 1970-इन सब अधिनियमों में ऐसे प्रावधान सम्मिलित किये गये हैं जिनसे कार्य-स्थल के अन्दर श्रमिकों के स्वास्थ्य तथा सुरक्षा को सुनिश्चित किया जाए और उनके कल्याण की व्यवस्था की जाए। श्रमिकों के स्वभाव व कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए इन सभी अधिनियमों में न्यूनतम स्तरों का उल्लेख किया गया है। मालिकों को इस बात की छूट है कि वे इन न्यूनतम

स्तरों से भी ऊपर उठे। किन्तु मालिकों द्वारा इन न्यूनतम स्तरों का पालन न करने या इनके विरूद्ध चलने की स्थिति में प्राधिकारी सत्ता द्वारा इन अधिनियमों में उल्लिखित दण्डात्मक उपायों का आश्रय लिया जा सकता है।

कारखाना अधिनियमों में, जो समय समय पर पारित होते रहे है, प्रकाश की उचित व्यवस्था, मशीनों से बचाव की व्यवस्था, तापक्रम पर नियन्त्रण, सुरक्षा के साधन आदि का न्यूनतम स्तर निश्चित किया गया। सन् 1948 के कारखाना अधिनियम में कल्याण कार्यो के लिये एक अलग अध्याय बना दिया गया था जिसके अन्तर्गत मालिकों के लिये कुछ कल्याण कार्य करने अनिवार्य कर दिये गये थे। उदाहरण कपड़े धोने की सुविधा, प्राथमिक चिकित्सा, कैन्टीन, विश्राम-स्थान, शिशु गृह तथा श्रमिकों को अपने कपड़े रखने और गीले कपड़े सुखाने के लिए समुचित स्थान प्राप्त हो सके। इसके अन्र्तगत, यह भी अनिवार्य कर दिया गया कि उन कारखानों में एक कैन्टीन अवश्य स्थापित होगी जनमें 250 या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं, 150 या अधिक श्रमिकों वाले कारखानों में एक भोजन-कक्ष और 50 या अधिक महिला श्रमिकों वाले कारखाने में एक शिशु-गृह अवश्य स्थापित होगा। अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारो को ऐसे नियम बनाने का अधिकार दिया गया है जिनमें इस बात की व्यवस्था हो सके कि कल्याण कार्यो के प्रबन्ध में हर कारखाने में प्रबन्धकों के साथ-साथ श्रमिकों के प्रतिनिधियों का भी सहयोग हो। एक अन्य धारा द्वारा इस बात की व्यवस्था कर दी गई है कि हर ऐसे कारखाने में जिसमें 500 या उससे अधिक श्रमिक काम करते हों, एक कल्याण कार्य अधिकारी की नियुक्ति होनी चाहिए। राज्य सरकारों को इन अधिकारियों के कर्तव्य, योग्यतायें और नौकरी की शर्तो आदि को निश्चित करने का अधिकार दिया गया है।

श्रम कल्याण निधियाँ

इन कानूनी प्रावधानों के अतिरिक्त, सरकार ने श्रम कल्याण निधियों की भी स्थापना की है ताकि विभिन्न प्रतिष्ठानों में श्रमिकों के लिए कल्याणकारी सुविधाओं की व्यवस्था की जा सके। आयुध निर्माण शालाओं सहित केन्द्रीय संस्थाओं में रेल और बन्दरगाहों को छोड़कर, श्रम कल्याण निधि की प्रयोगात्मक रूप से स्थापना करने के सम्बन्ध में सरकार ने 1946 में एक योजना बनाई। इन निधियों से श्रमिकों व उनके परिवारों के लिए उन कल्याण-कार्यो की वित्तीय व्यवस्था की जाती थी जिनके लिए किसी अधिनियम के अन्तर्गत प्रावधान नहीं थे। इन निधियों का उपयोग कमरे के अन्दर तथा बाहर मैदान में खेले जाने वाले खेलों, नाटक व सिनेमा जैसे मनोरंजन कार्यो तथा पुस्तकालय व वाचानालय आदि के लिए किया जाता था। इस निधि को धन श्रमिकों के अंशदानों तथा सरकारी अनुदानों से तो प्राप्त होता ही था, साथ ही अन्य अनेक स्रोतों से भी इसके लिए धन संचित किया जाता था, जैसे जुर्माने कैन्टीन के लाभ, साइकिल स्टैण्ड के ठेकेदारों से प्राप्त होने वाली आय, फलों व साग-सब्जी की दुकानें, सिनेमा के 'शो, ड्रामों तथा उपभोक्त भण्डारों से होने वाली आय आदि।

श्रम कल्याण निधियां कानूनी प्रावधानों के अनुसार अब कोयला, अभ्रक, लोहा, मैंगनीज, चूना तथा डोलोमाइट की खानों में तथा बीड़ी व सिनेमा उद्योगों में स्थापित कर दी गई है। डाक व तार बन्दरगाहों, गोदियों तथा रेलवे जैसी कुछ विपशिष्ट सेवाओं के श्रमिकों के लिए पृथक से भी कल्याण निधियों की स्थापना की गई है। कुछ राज्य सरकारों ने स्वयं अपने कल्याण सम्बन्धी कानून बनाये हैं, जैसे कि असम चाय बागान कर्मचारी कल्याण निधि अधिनियम 1959, तमिलनाडु, महाराष्ट्र श्रम कल्यण अधिनियम 1953, उत्तर प्रदेश चीनी व पावर एल्कोहल उद्योग श्रम कल्याण तथा विकास निधि अधिनियम 1950, तमिलनाडु श्रम कल्याण निधि अधिनियम 1972 आदि। निजी तथा सरकारी उद्योगों को भी इस बात के लिए प्रोत्साहित किया गया है कि वे ऐच्छिक आधार पर अपने कर्मचारियों के लिए कल्याण निधियों की स्थापना करें।

रेलवे द्वारा किये जाने वाले कल्याण कार्यो की एक उल्लेखनीय विशेषता सन् 1931 में स्टाफ हित निधियों की स्थापना थी। इस निधि में से रेलवे के कर्मचारियों तथा उनके परिवारों को सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाती है। ये सुविधाएं शिक्षा, मनोरंजन, मनोविनोद, खेल कूद स्काउटिंग, आपात काल में सहायता तथा बीमारी में आर्थिक सहायता के रूप में दी जाती है।

बन्दरगाहों आदि में श्रम कल्याण कार्य

सभी प्रमुख बन्दरगाहों पर श्रमिकों एवं परिवारों के लिए योग्य डाक्टरों की तथा उचित सामान सहित औषधालयों की व्यवस्था है। कोचीन ओर मारमागाओं (गोवा में) में अस्पताल भी हैं, कांदना में दो क्लब भी है। मुम्बई, चेन्नई, विशाखापत्नम और कोचीन में सहकारी साख समितियां तथा कोलकाता में एक ऋण निधि है। अधिकांश बन्दरगाहों पर मनोरंजन तथा कैन्टीन की सुविधायें प्रदान की जाती हैं श्रमिकों के बच्चों के लिए प्राइमरी स्कूल भी हैं तथा चेन्नई में दुखःग्रस्त श्रमिकों के लिए कल्याण निधि की व्यवस्था है। गोदी कर्मचारियों के लिए भी उचित सामान सहित चिकित्सालयों, स्कूलों, सहकारी समितियां, कैन्टीनों तथा खेलों की व्यवस्था है। गोदी बाड़ो में स्थापित गोदी श्रमिक बोर्डो द्वारा की जाती है। 1961 की गोदी श्रमिक (स्वास्थ्य, सुरक्षा तथा कल्याण) योजना को भी लागू किया गया है।

सरकार ने मुम्बई तथा कोलकाता में जहाज के कर्मचारियों के लिये भी कल्याण कार्य किये हैं तथा उनके लिये भी चिकित्सालय, कैन्टीन व होस्टल की व्यवस्था है। उनके लिये एक त्रिदलीय राष्ट्रीय कल्याण बोर्ड की भी स्थापना की गयी है। केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग में भी प्राविडेंट फण्ड, पेंशन तथा चिकित्सा की सुविधायें प्रदान की जाती है। डाक-तार डारमेटरीज, विश्राम कक्ष, अवकाश गृह, चिकित्सालय तथा लगभग मनोरंजन क्लबों आदि की व्यवस्था की है। तपेदिक से पीड़ित कर्मचारियों के लिए विभिन्न सेनीटोरियम में पलंगों की व्यवस्था है। 1960-61 से विभाग कर्मचारियों के लिये एक कल्याण निधि की स्थापना की गई है।

कल्याण कार्य से होने वाले लाभदायक प्रभावों के सम्बन्ध में श्रम अन्वेषण समिति ने तीन आवश्यक लाभों की ओर विचार किया है-

(1) कल्याण सुविधाएँ - जैसे शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ , खेल-कूद, मनोविनोद आदि-कारखाने में भावनात्मक वातावरण पर लाभपूर्ण प्रभाव रखती है, साथ ही साथ औद्योगिक शान्ति को कायम रखने में भी सहायता करती हैं। जब श्रमिक यह अनुभव करने लगते हैं कि मालिक तथा राज्य सरकारें उनके दैनिक जीवन में रूचि रखते हैं तथा प्रत्येक सम्भव तरीके से उनके भाग्य को खुशहाल बनाना चाहते हैं, तब उनकी असन्तोष एवं विषाद प्रवृत्ति स्वयं धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है।

(2) उत्तम गृह व्यवस्था, सहकारी समितियां , जलपान-गृह बीमारी तथा प्रसूति-सुविधाए, प्राविडेण्ट फण्ड, ग्रेचुटी एवं पेंशन और इसी तरह की अन्य बातें श्रमिकों में यह भावना आवश्यक रूप से उत्पन्न करती हैं कि वे उद्योगों में अन्य लोगों की भांति ही महत्व रखते हैं।

(3) मानवता के मूल्य के अतिरिक्त यहाँ तक सामाजिक लाभ भी होता है। जलपान गृहों की व्यवस्था से, जहाँ श्रमिकों को सस्ता, तथा संतुलित आहार उपलब्ध होता है, उनकी शारीरिक उन्नति होती है। मनोविनोद के साधनों से उनकी बुराइयों को कम करना चाहिए, चिकित्सा सहायता तथा प्रसूति एवं शिशु कल्याण से श्रमिकों तथा उनके परिवारों का स्वास्थ्य सुधारना चाहिए और सामान्य मातृ तथा शिशु मृत्युओं की दर कम करनी चाहिए। शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं द्वारा उनकी मानसिक कुशलता तथा आर्थिक उत्पादन शक्ति को बढ़ाया जाना चाहिए।

श्रम कल्याण कार्यक्रम

भारत में श्रम कल्याण कार्यक्रमों के लिए उत्तरदायी या इन कल्याण कार्यक्रमों को प्रदान करने वाले विभिन्न अभिकरण या संस्थाएँ निम्नलिखित हैं -

(1) केन्द्रीय सरकार द्वारा चलाए जाने वाले श्रम कल्याण कार्यक्रम |

(2) राज्य सरकारों द्वारा चलाए जाने वाले श्रम कल्याण कार्यक्रम ।

(3) सेवायोजकों या कारखानों के मालिकों और उनके संघ द्वारा चलाए जाने वाले श्रम कल्याण कार्यक्रम ।

(4) कर्मचारी संघों द्वारा चलाए जाने वाले श्रम कल्याण कार्यक्रम ।

(5) श्रम कल्याण हेतु बनायी गयी वैधानिक कल्याण निधियां।

(1) न्यूनतम वेतन अधिनियम-1948 असंगठित क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों का वेतन, न्यूनतम वेतन, अधिनियम, 1948 के तहत निर्धारित और संशोधित किया जाता है। अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्र और राज्य सरकारें अपने अपने कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले अनुसूचित रोजगारों के लिए मजदूरी की न्यूनतम दर निर्धारित करती है।

(2) वेतन भुगतान अधिनियम- वेतन भुगतान अधिनियम, 1936 के अनुसार उद्योगो में लगे कुछ विशेष वर्ग के कर्मचारियों के वेतन भुगतान को नियमित करने के लिए बनाया गया था। इसका उद्देश्य वेतन में गैर कानूनी अथवा बिना कारण भुगतान में देरी से उठे विवाद को तेजी से निपटाना है। वर्तमान मे यह अधिनियम 1,600 रू. प्रतिमाह से कम मजदूरी पाने वालों पर ही लागू होता है।

(3) बोनस भुगतान अधिनियम, 1965- सन् 1965 के बोनस भुगतान अधिनियम के अनुसार कर्मचारियों को कानून द्वारा निर्धारित बोनस का भुगतान करने का प्रावधान है। जिसके अन्तर्गत कर्मचारी को पुरस्कार के रूप में 3,500रू. मासिक तक वेतन पाने वाले कर्मचारी तथा 2,500रू. मासिक वेतन से अधिक पाने वाले को मासिक वेतन के आधार पर बोनस दिया जाएगा। बोनस भुगतान अधिनियम में नया संशोधन 9 जुलाई, 1975 से लागू किया गया और 1 अप्रैल 1993 से प्रभावी बनाया गया।

महिला श्रमिकों के लिए विशेष प्रकोष्ठ

श्रम मंत्रालय ने 1975 में एक 'महिला श्रम प्राकेष्ठ' की स्थापना की थी। इस प्रकोष्ठ का उद्देश्य कामकाजी महिलाओं और उनके काम में आने वाली बाधाओं को दूर करना, उनकी मजदूरी व कुशलता बढ़ाना और उनके लिए अधिक रोजगार के बेहतर अवसर जुटाना है। इस प्रकोष्ठ के मुख्य-मुख्य कार्य इस प्रकार हैं-

(अ) राष्ट्रीय जनशक्ति और आर्थिक नीतियों की रूपरेखा के अन्तर्गत महिला श्रम शक्ति के लिए नीतियाँ और कार्यक्रम बनाना और उनका समन्वय करना।

(आ) कामकाजी महिलाओं के लिए बनाए गए कार्यक्रम का प्रभावी ढंग से क्रियान्वयन सुनिश्चित करने के लिए अन्य सरकारी एजेन्सियों के साथ सम्पर्क बनाए रखना।

(इ) महिलाओं को रोजगार में प्रोत्साहन देने के लिए समान मजदूरी अधिनियम, 1976 का क्रियान्वयन और निगरानी करना।

(ई) महिला रोजगार को बढ़ावा देने के लिए समान मजदूरी अधिनियम, 1976 के तहत राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड तथा राज्य स्तर पर सलाहकार समितियाँ गठित करना।

बंधुआ मजदूरी

बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 के तहत देश में बंधुआ मजदूरी प्रथा समाप्त कर दी गई हैं इस अधिनियम में सभी बंधुआ मजदूरों को मुकत कराने, उनके कर्ज को माफ करने और उनके पुनर्वास की व्यवस्था की गई है सरकार द्वारा प्रत्येक बंधुआ मजदूर के पुनर्वास हेतु सरकार द्वारा 20,000रू सहायता देने का प्रावधान हें वर्ष 1978-79 से 31 मार्च, 2002 तक इस योजना के तहत राज्य सरकारों के द्वारा 6,289,74 लाख रू. की राशि जारी की जा चुकी थी ओर 2,60,754 बंधुआ मजदूरों का पुनर्वास किया जा चुका है।

श्रमिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण

देश में श्रमिकों के प्रशिक्षण हेतु एक प्रमुख संस्थान, वी.वी.गिरी राष्ट्रीय श्रम संस्थान की स्थापना सन 1962 में की गया | वर्तमान में यह संस्थान नोयडा (उत्तर प्रदेश) में स्थित है | यह संस्थान भारत सरकार के श्रम मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त संस्था है | यह संस्थान श्रमिकों से सम्बद्ध अनुसंधान कार्यों और श्रम प्रशासकों, मजदूर यूनियनों, सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबन्धकों तथा अन्य सरकारी संस्थानों के कर्मियों के प्रशिक्षण में लगा है| इस संस्थान ने बाल तथा महिला मजदूरों पर अपना ध्यान विशेष रूप से केंद्रित किया है |

श्रमिक शिक्षा

श्रमिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य कामगार तबके के सभी वर्गो में अपने अधिकारों ओर कर्तव्यों के बारे में जागरूकता पैदा करना हें ताकि वे देश के सामाजिक-आर्थिक विकास में भागीदार बन सकें श्रमिक शिक्षा कार्यक्रम को 1958 में स्थापित केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा चलाया जाता है।

श्रमिक सुरक्षा

कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों के कलयाण, सुरक्षा सम्बन्धी विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखते हुए कारखाना अधिनियम, 1948 प्रमुख कानून हें इसका उद्देश्य कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों को औद्योगिक और व्यावसायिक जोखिमों में सुरक्षा प्रदान करना है इस अधिनियम में व्यस्क श्रमिकों के 48 घण्टे प्रति सप्ताह कार्य करने का प्रावधान है 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों से काम लेने की मनाही है।

खानों में सुरक्षा

खान अधिनियम, 1952 और इसके अन्तर्गत निर्मित नियमों में खान में काम करने वाले श्रमिकों की सुरक्षा, व्यवसाय और कल्याण का प्रावधान रखा हैं इन प्रावधानों को श्रम मंत्रालय, खान सुरक्षा महानिदेशालय द्वारा लागू करता है| इसके मुख्य कार्य है- खानों का निरीक्षण, स्थिति की गम्भीरता के अनुरूप सभी घातक ओर गम्भीर दुर्घटनाओं की जांच-पडताल, विभिन्न खानों के परिचालन के संबंध में कानूनी स्वीकृति, खान सुरक्षा उपकरणों, यंत्रों ओर सामग्रियों की स्वीकृति देना | संवैधानिक क्षमता प्रमाण-पत्र प्रदान करने के लिए परीक्षण की व्यवस्था करना, सुरक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए राष्ट्रीय पुरस्कारों और सुरक्षा सम्मेलनों आदि का आयोजन करना|

प्रधानमंत्री के श्रम पुरस्कार

विभागीय प्रतिष्ठानों और केन्द्र तथा राज्य सरकार के सार्वजानिक प्रतिष्ठानों के उन कर्मचारियों यह पुरस्कार दिया जाता है जिन श्रमिकों का उतपादन बढ़ाने में उल्लेखनीय योगदान होता है और जिन्होंने असाधारण लगन तथा उत्साह के साथ अपने कर्तव्य का पालन किया हो | उन्हें वरीयता क्रम से श्रम रतन, श्रम भूषण, श्रम वीर ओर श्रम श्री/देवी पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं| पुरस्कार मे प्रमाण पत्र तथा क्रमशः दो लाख (1 पुरस्कार), एक लाख (4पुरस्कार), 60 हजार (12 पुरस्कार) और 40 हजार रूपये (16 पुरस्कार) की नगद राशि भी दी जाती है|

श्रमिक मुआवजा अधिनियम, 1923

सन् 1923 में श्रमिक मुआवजा अधिनियम पारित होने के साथ-साथ सामाजिक सुरक्षा की शुरूआत हुई| इसके अन्तर्गत कर्मचारियों और उनके आश्रितों को अपने सेवाकाल के दौरान किसी दुर्घटना से मृत्यु या अपंग होने की स्थिति में मुआवजा देने का प्रावधान है| स्थायी व पूर्ण विकलांग होने पर न्यूनतम मुआवजा राशि 90 हजार रू. और मृत्यु हो जाने पर 80 हजार रू. निर्धारित की गई है| कर्मचारी की आयु ओर वेतन के हिसाब से, मृत्यु होने पर अधिकतम मुआवजा 9.14 लाख रू. और स्थायी रूप से पूर्ण विकलांगता होने पर 10.97 लाख रू. निर्धारित किया गया है।

कल्याण कार्यो के क्षेत्र

कैन्टीन-

अब इस बात को मान लिया गया है कि कैन्टीन हर औद्योगिक संस्था का एक आवश्यक अंग है। ये श्रमिकों के स्वास्थ्य, कार्यक्षमता तथा उनके हित की पुष्टि से अत्यधिक लाभदायक होती है। एक औद्योगिक कैन्टीन के उद्देश्य है-श्रमिकों को अपूर्ण व असन्तुलित आहार के स्थान पर सन्तुलित आहार उपलब्ध कराना, सस्था और स्वच्छ भोजन प्रदान करना और काम करने के स्थान के निकट ही विश्राम करने का अवसर देना, फैक्टरी में कई घण्टे काम करने के पश्चात उनके काम के स्थान से आने जाने की कठिनाइयो को दूर करना और इस प्रकार उनके समय की बचत करना, भोजन एवं खाद्य सामग्री प्राप्त करने में जो कठिनाइयां होती है उनको दूर करना आदि। इसके अतिरिक्त कैन्टीन द्वारा एक ऐसा स्थान प्राप्त हो जाता है जिसमें कारखाने के हर विभाग के कर्मचारी परस्पर मिल सकते हैं तथा जहां वे न केवल खाना खाते है वरन बातचीत भी कर सकते हैं और विश्राम कर अपनी थकान दूर कर सकते है। इस प्रकार कैन्टीन श्रमिकों के आत्म विश्वास तथा हौंसले पर अधिक प्रभाव पड़ता हैं ‘‘कैन्टीनों की स्थान की ओर ध्यान देना राज्य का विशेष कार्य माना जाना चाहिए और कैन्टीन का चलाना मालिकों द्वारा किए राष्ट्रीय निवेश समझना चाहिए।’’

शिशुगृह

जहाँ तक शिशुगृहों का प्रश्न है भारत सरकार ने कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारों को कुछ नियम बनाने के अधिकार दिये है। राज्य सरकारें यह नियम बना सकती है कि ऐसे तमाम कारखानों में जहां 50 या इससे अधिक महिलायें काम करती हैं उनके 6 वर्ष से कम के बालकों के लिये एक अलग उचित कमरा सुरक्षित कर देना चाहिये। ऐसे कमरों के स्तर के लिये बच्चों की देखरेख के लिए भी नियम बनाये जा सकते है। अधिकांश राज्यों ने इस अधिकार के अन्तर्गत नियम बनाये भी है। उत्तर प्रदेश में मातृत्व -हित-लाभ अधिनियम के अन्तर्गत उन तमाम कारखानों में जिनमें 50 या इससे अधिक महिला श्रमिक कार्य करती है, एक शिशु गृह खोलना आवश्यक है। इसी

प्रकार के उपबन्ध 1952 के खान अधिनियम तथा 1961 के बागान श्रम अधिनियम मे भी है। किन्तु केवल कुछ कारखानो को छोडकर अधिकांश में शिशुगृह उचित प्रकार से स्थापित नहीं किये गये है। राष्ट्रीय श्रम अयोग ने भी संकेत किया था कि अधिकांश फैक्टरियों व खानों में शिशुगृह के स्तर में सुधार की आवश्यकता हैं साधारणतः शिशु गृह कारखानों के उपेक्षित स्थानों पर होते हैं तथा कार्य करने के स्थान से भी दूर होते है। उनमें बालकों के लिये खिलौने तक नहीं होते तथा बच्चों की देख-रेख के लिये भी कोई व्यक्ति नहीं होता | शिशुगृहों का महत्व बहुत अधिक है क्योंकि माताओं की कार्य-कुशलता निःसन्देह इस बात पर निर्भर करती है कि उन्हें अपने बच्चों की ओर से चिन्ता न हो और उन्हें यह विश्वास हो कि बच्चे सुरक्षित हैं तथा उनकी उचित प्रकार से देखभाल हो रही है।

मनोरंजन सुविधाएँ -

मनोरंजन की सुविधायें, बहुत ही महत्वपूर्ण और उपयोगी होती है। श्रमिकों को शिक्षा व प्रशिक्षण देने में भी इनका काफी महत्व है। कारखानों और खानों में अधिक घण्टे काम करने से जो नीरसता , थकान और शारीरिक क्लांति उत्पन्न हो जाती है, उनको मनोरंजन सुविधायें कम कर सकती हैं तथा श्रमिक के जीवन में प्रसन्नता शान्ति लाने में सहायक सिद्ध होती है। साधारण श्रमिक धूल, शोर तथा गर्मी से परिपूर्ण वातावरण में कार्य करता है | श्रमिक, जो गांव से आते हैं, अपने आपको नगरीय या औद्योगिक वातावरण के अनुकूल बनाने में कठिनाई अनुभव करते हैं। जिस स्थान पर वे कार्य करते हैं, वह उनके घरों से प्रायः दूर होता हैं और वे अपने मित्रों व सम्बन्धियों आदि से महीनों दूर रहते हैं इस प्रकार वे सामाजिक जीवन वंचित रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अधिकांश श्रमिक कई दुर्गुणों का शिकार हो जाते हैं। उद्योगों में अधिक यन्त्रीकरण हो जाने से तथा कार्य के घण्टों में कमी हो जाने से श्रमिकों का समय अब पहले की अपेक्षा अधिक खाली रहता है। यह बात महत्वपूर्ण है कि इस खाली समय का किस प्रकार उपयोग किया जाता है। कार्य की समाप्ति पर तथा दोपहर को विश्राम के घण्टे आदि में जो खाली समय रहता है उसमें मनोरंजन सुविधाओं की व्यवस्था में श्रमिकों के स्वास्थ्य में उन्नति होगी तथा उनके ज्ञान में वृद्धि होगी तथा एक स्थायी और सन्तोषी श्रमिक वर्ग बन सकेगा। इस भांति मालिक-मजदूर सम्बन्ध भी सौहार्दपूर्ण होंगे और उत्पादिता में वृद्धि होगी।

1924 के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने श्रमिकों के अवकाश के समय का उपयोग करने हेतु कुछ सुविधाओं में वृद्धि करने के लिए एक सिफारिश की थी। यह विषय अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन, 1947 के 30वें अधिवेशन और 1956 के 39वें अधिवेशन द्वारा फिर विचार के लिए रखा गया। 1956 के अधिवेशन ने, संस्थानों में या उनके समीप श्रमिकों के लिए मनोरंजन की सुविधाओं की महत्ता पर बल दिया और इस बात की सिफारिश की कि इन सुविधाओं के प्रशासन में श्रमिकों का भी हाथ होना चाहिए।

भारत में, राज्य अथवा मालिकों द्वारा मनोरंजन सुविधाओं पर बहुत कम ध्यान दिया गया है, यद्यपि जैसा कि ‘‘ मालिकों के कल्याण कार्य‘‘ के अन्तर्गत उल्लेख स्पष्ट है, कई स्थानों पर अच्छे कार्य भी किये गये हैं। सरकार ने भी अनेक राज्यों के श्रम कल्याण केन्द्रो में मनोरंजन सुविधाओं की व्यवस्था की है। कुछ मालिक शिकायत करते हैं कि श्रमिकों में क्लब लोकप्रिय नहीं हैं। इसका कारण यह है कि इन केन्द्रों में या तो अच्छा प्रबन्ध नहीं होता या इनमें टेनिस, बिलियर्ड आदि जैसे आधुनिक खेलों की व्यवस्था होती है जिन्हें खेलना श्रमिकों की क्षमता के बाहर है। जहाँ कहीं भी उचित मनोरंजन की व्यवस्था है तथा प्रबन्ध ठीक है, वहाँ मनोरंजन सुविधायें श्रमिकों तथा उनके परिवारों में बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुई है।

चिकित्सा सुविधायें

चिकित्सा सुविधाओं और स्वच्छ वातावरण का जीवन में अत्यधिक महत्व है। औद्योगिक मजदूरों के स्वास्थ्य का महत्व स्वयं उनके लिए नहीं है अपितु उसका सम्बन्ध साधारणतः औद्योगिक विकास व प्रगति से भी है। बीमारी तथा श्रमिकों की शारीरिक दुर्बलता अनेक बुराइयों का कारण बन जाती है। इन्हीं के कारण अनुपस्थिति होती है, तथा नैतिकता गिर जाती है तथा समय की पाबन्दी नहीं हो पाती। परिणामस्वरूप कार्यस्थल में उत्पादन कम होता जाता है तथा मालिक मजदूरों के सम्बन्ध खराब हो जाते हैं। भारत में श्रमिकों के स्वास्थ्य पर कई बातों का बुरा प्रभाव पड़ता है, जैसे अस्वस्थ्य वातावरण में काम करना, कारखानों में अस्वास्थ्यकर दशायें , गर्म देशों के रोग और श्रमिकों की अज्ञानता व निर्धनता के कारण बीमारी, काम करने के अधिक घण्टे, कम मजदूरी तथा उनकी प्रवासिता, घटिया तथा अपर्याप्त भोजन तथा रहन-सहन की दशायें आदि। इसलिए श्रमिकों के लिए देश में चिकित्सा सुविधाओं की व्यवस्था करना एक महत्वपूर्ण कार्य है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना

सरकार ने असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के लिए 2007 से ‘ राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना ’ आरम्भ की गई |
यह योजना पहली अप्रैल 2008 से चालू हो गयी| इस योजना के तहत लाभार्थी परिवार को नगद भुगतान के बिना इस्मार्ट कार्ड की आधार पर प्रतिवर्ष 30,000 रूपये की बीमा राशि दी जायेगी जिसमे केन्द्र और राज्य सरकार की भागीदारी क्रमशः 75:25 है|

नहाने धोने की सुविधायें

कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत यह आवश्यक कर दिया गया है कि उस प्रत्येक कारखानों में जहाँ ऐसा कोई काम हो रहा है जिससे श्रमिकों का किसी हानिप्रद या गन्दी वस्तु से सम्पर्क होता है वहाँ श्रमिकों को पर्याप्त मात्रा में धोने योग्य जल तथा उनके प्रयोग के लिए उचित स्थान एवं सुविधायें दी जानी चाहिए। लगभग सारे कारखाने धोने के लिए पर्याप्त जल प्रदान करते हैं परन्तु साबुन, सोडा तथा तौलिया, जोकि आवश्यक है, नहीं दिये जाते। कई स्थानों पर नलों, बाल्टियों तथा चिलमचियों की संख्या पर्याप्त नहीं है। केवल कुछ ही स्थानों पर धोने की सुविधायें पूर्णरूप से सन्तोषजनक है। कारखाने के भीतर नहाने की व्यवस्था बहुत कम मालिकों ने प्रदान की है यद्यपि ये सुविधायें अत्यन्त आवश्यक हैं क्योंकि जो श्रमिक भीड़-भाड़ के क्षेत्रों में रहते हैं, उनके आवासों पर धाने आदि की सुविधायें अपर्याप्त हैं, अतः स्नान की सुविधाओं से उनकी काफी आराम मिलेगा और स्वास्थ्य तथा कार्य कुशलता में वृद्धि होगी। खानों जहाँ स्नान की सुविधायें अत्यन्त आवश्यक हैं, खानों के ऊपर स्थानगृहों की व्यवस्था है। केन्द्रीय सरकार ने कोयला खानों के लिए स्नानगृहों को स्थापित करने के लिए 1959 में नियम बनाये हैं और उनके स्तर भी निर्धारित कर दिये हैं। इस सम्बन्ध में झरिया कोयला खान क्षेत्र में टाटा की खानों के स्नानगृहों का अलग अलग प्रबन्ध है। अन्य खानों में नहाने की सुविधायें अत्यन्त असन्तोषजनक हैं, यद्यपि अब कोयला खान श्रमिक आवास तथा सामान्य कल्याण निधि अधिनियम के अन्तर्गत इस सम्बन्ध में कुछ सुधार हो रहे हैं।

श्रमिकों की शिक्षा

संगठित, असंगठित तथा ग्रामीण क्षेत्र के श्रमिकों के लिए राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा इकाई स्तर पर श्रमिक योजना लागू करने की लिए श्रम एवं रोजगार मंत्रालय , भारत सरकार ने सन् 1958 में केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा बोर्ड की स्थापना की। यह संस्थान केन्द्रीय श्रमिक संघों के संगठनों एवं संगमों के सदस्यों के लिए राष्ट्रीय स्तर के प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संचालन करता है। इसके साथ ही, यह शिक्षा अधिकारियों के लिए रोजगारपूर्ण प्रशिक्षण की तथा बोर्ड के अधिकारियों के लिए नवीकरण पाठ्यक्रमों की भी व्यवस्था करता है। सन् 1994 में इसने अनेक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया था। ये प्रशिक्षण इन कार्यक्रमों के सम्बन्ध में थे- नेतृत्व का विकास, उत्पादकता, महिला व बाल श्रमिकों की समस्याओं, औद्योगिक स्वास्थ्य तथा सुरक्षा आदि।

बोर्ड ने श्रमिकों के उपयोग के लिये श्रम सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण विषयों की सरल भाषा में पाठ्य-पुस्तिकायें भी प्रकाशित की है। बोर्ड तथा क्षेत्रीय केन्द्र ने श्रम सम्बन्धी विषयो पर अनेक गोष्ठियों भी आयोजित की है। प्रशिक्षण देने के लिये दृश्य-श्रव्य साधनों तथा सामान्य दृश्य-साधनों का भी प्रयोग किया जाता है। शिक्षण के स्तर में सुधार लाने के लिये बोर्ड ने अनेक फ्लैश-कार्ड, फ्लिप चार्ट तथा रेखाचित्र आदि तैयार कराये है।

राष्ट्रीय श्रम आयोग का यह कथन था कि श्रमिकों की शिक्षा की वर्तमान योजना भी, अन्य किसी भी योजना के समान ही, सर्वथा पूर्ण नही है और आवश्यकता इस बात की है कि इसमें सुधार किया जाये तथा इसे शक्तिशाली बनाया जाये। बोर्ड द्वारा साहित्य के निर्माण के कार्यक्रम में भी सुधार तथा तीव्रता लाई जानी चाहिये। श्रमिकों में निरक्षरता को समाप्त करने के लिये सरकार को एक व्यापक वयस्क साक्षरता कार्यक्रम चालू करना चाहिए। ऐसा कार्यक्रम श्रमिक को प्रशिक्षण देने के कार्यक्रम में बड़ा सहायक होगा। आयोग की सिफारिश है कि श्रमिकों की शिक्षा का कार्यक्रम श्रमिक संघों द्वारा ही बनाया तथा लागू किया जाना चाहिये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये श्रमिक शिक्षा के केन्द्रीय बोर्ड को चाहिये कि वह श्रमिक संघों की सहायता देने की कार्यविधि को सरल बनाये और मालिकों को चाहिये कि वे कार्यक्रम के लिये सुविधायें प्रदान करके सहयोग दे। श्रमिक संघ केन्द्रों को चाहिये कि वे विश्वविद्यालयों एवं अनुसंधान संस्थाओं से तालमेल स्थापित करें। उपयुक्त कार्यक्रमों की रूपरेखा बनायें और सरकार को चाहिये कि वह विश्वविद्यालयों को इस बात के लिये प्रोत्साहित करें कि वे संध के नेताओं व संगठनकर्ताओं के लाभ के लिये विस्तृत पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करें आयोग ने यह भी सिफारिश की कि श्रमिक शिक्षा केन्द्रीय बोर्ड की स्थापना स्थायी आधार पर की जानी चाहिये, परन्तु इसके संविधान में परिवर्तन किया जाना चाहिये और श्रमिक संघों द्वारा नामांकित व्यक्ति ही गर्वनरों के बोर्ड का अध्यक्ष तथा योजना का निदेशक बनाया जाना चाहिये।

8.4 सारांश (Summery)

श्रम कल्याण के अन्तर्गत आवास समस्या, स्वास्थ्य एवं शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएं, आहार सुविधाएं, कैंटीन, आराम तथा खेल-कूद, की व्यवस्था, सहकारी समतियाँ, बाल-क्रीड़ा स्कूल, स्वच्छता सम्बन्धित व्यवस्था, वेतन सहित अवकाश, मालिकों द्वारा अकेले ऐच्छिक रूप से अथवा श्रमिकों के सहयोग से चलाई गई सामाजिक बीमा व्यवस्था, जिसमें बीमारी तथ प्रसूति सुविधा योजना, प्रोविडेण्ट फण्ड सेवोपहार और पेंशन इत्यादि को भी सम्मिलित कर सकते हैं। उक्त सभी क्षेत्रों में समाज कार्य संस्थाओं के द्वारा व्यवसायिक स्तर पर सेवाओं का संचालन किया जाता है।

8.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. श्रम कल्याण श्रमिकों के कल्याण में सहायक है इस क्षेत्र में समाज कार्य की भूमिका के महत्व को स्पष्ट कीजिए।

२. महिला श्रमिकों के शिशुओं हेतु श्रम कल्याण में विधान को परिभाषित कीजिये |

३. श्रमिकों के स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने हेतु श्रम कल्याण में दिए गए प्रावधानों को समझाइए |

४. श्रमिकों हेतु जीवन बीमा सम्बन्धी प्रावधानों कि चर्चा कीजिये |

५. अपने आस-पास स्थित किसी संस्थान में श्रमिकों के कल्याण हेतु किये गई प्रावधानों की समीक्षा कीजिये |

8.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अहमद रफीउद्दीन मिर्जा, समाज कार्य दर्शन एवं प्रणालियां, शाइनिंग प्रेस लखनऊ, 2004.
2. सिंह, सुरेन्द्र, पी.डी. मिश्र, समाज कार्य: इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियां, न्यू रायल बुक कम्पनी लखनऊ, 2010.
3. मदन जी0 आर., अमित अग्रवाल, परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन दिल्ली, 2012.
4. द्विवेदी राकेश, समाज कार्य व्यावसाय: विकास एवं चुनौतियां, न्यू रायल बुक कम्पनी लखनऊ, 2007.
5. सिंह मंजीत, व्यावसायिक समाज कार्य का आविर्भाव, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008.
6. सिंह मंजीत, समाज कार्य के मूल तत्व, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008.

इकाई-9

सामाजिक सुरक्षा

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य (objective)

9.1 प्रस्तावना (Preface)

9.2 भूमिका (Introduction)

9.3 सामाजिक सुरक्षा (Social Secuirity)

9.4 सारांश(Summary)

9.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions for Practice)

9.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference)

9.0 उद्देश्य (objective)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

1. सामाजिक सुरक्षा के अर्थ को जान सकेंगे|
2. सामाजिक सहायता एवं सामाजिक बीमा के बारे में जान सकेंगे।
3. सामाजिक सहायता एवं सामाजिक बीमा के मध्य अंतर समझ सकेंगे|
4. भारत सरकार के सामाजिक सहायता एवं सामाजिक बीमा सम्बन्धी कार्यक्रमों को जान सकेंगे|

9.1 प्रस्तावना (Preface)

सामाजिक सहायता एवं सामाजिक बीमा ऐसी अवधारणाएं हैं जो समाज कार्य व्यवसाय के लिए अत्यन्त प्रासंगिक हैं| इनकी जानकारी एवं समझ एक कार्यकर्ता के लिए अत्यन्त आवश्यक है| चूंकि वर्तमान में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा प्रचलित है, इसलिए एक सामाजिक कार्यकर्ता के लिए उक्त अवधारणाओं की जानकारी अत्यन्त आवश्यक है जिससे कि वे सामाजिक न्याय की स्थापना एवं नागरिकों के कल्याण को सुनिश्चित कर सकें।

9.2 भूमिका (Introduction)

समाज कार्य व्यवसाय समाज के कुछ विशिष्ट वर्गों के कल्याण के लिए भी कार्य करता है जिनमें कर्मचारी कल्याण एवं पिछडा वर्ग, अनुसूचित जाति एवं जनजाति कल्याण के क्षेत्र महत्वपूर्ण हैं। समाजिक सहायता समाजिक बीमा से सम्बन्धित कार्यक्रम उक्त वर्गों के कल्याण में महत्वपूर्ण होते हैं। इन कार्यक्रमों में अधिकांश का संचालन सरकारी संगठनों के द्वारा किया जाता है जबकि कुछ निजी क्षेत्र के संगठन भी इन कार्यक्रमों का संचालन

करते हैं अतः एक सामाजिक कार्यकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह इन कार्यक्रमों के प्रति जागरूक रहे तथा इनका लाभ लक्षित वर्गों को दिलाकर सामाजिक न्याय की स्थापना में अपनी भूमिका का निर्वाह कर सकें।

9.3 सामाजिक सुरक्षा (Social Secuirity)

सामाजिक सुरक्षा का तात्पर्य उस सुरक्षा से है जिसे समाज अपने सदस्यों को संकट से बचाने के लिए समुचित रूप से प्रदान करता है। ये संकट ऐसी विपत्तियां हैं जिनसे निर्धन व्यक्ति या श्रमिक अपनी सुरक्षा अपने साथियों के सहयोग अथवा अपनी दूरदर्शिता से भी नहीं कर पाता। इन विपत्तियों के कारण श्रमिक की कार्यक्षमता को क्षति पहुंचती है और वह अपना और अपने आश्रितों का पोषण नहीं कर पाता। राज्य की स्थापना का उद्देश्य जनसाधारण की भलाई करना है इसलिए सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करना राज्य का ही प्रमुख कार्य है। यद्यपि राज्य की प्रत्येक नीति का सामाजिक सुरक्षा पर कुछ न कुछ प्रभाव पडता ही है, तथापि सामाजिक सुरक्षा सेवाओं के अन्तर्गत केवल ऐसी योजनाऐं आती हैं, जैसे बीमारी की रोकथाम तथा उसका इलाज, रोजी कमाने योग्य न होने की अवस्था में श्रमिक को सहायता देना और उसको आजीविका उपार्जन के योग्य बनाना आदि। परन्तु यह भी कहा जा सकता है कि ऐसे तमाम साधनों से सुरक्षा नहीं मिल सकती क्योंकि सुरक्षा का तात्पर्य किसी प्रत्यक्ष वस्तु से नहीं होता वरन् यह एक मानसिक अनुभूति भी है। सुरक्षा से तभी लाभ अनुभव हो सकता है जब सुरक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति का इस बात में विश्वास हो कि उसको सम्पूर्ण सुविधाएं, जब भी उसे आवश्यकता होगी, प्राप्त हो जाएंगी। यह भी आवश्यक है कि सुरक्षा प्रदान करते समय यह देख लेना चाहिए कि सहायता और सुविधाओं की मात्रा और गुण पर्याप्त हैं।

सामाजिक सुरक्षा एक अत्यधिक व्यापक शब्द है और इसके अन्तर्गत सामाजिक बीमा व सामाजिक सहायता की योजनाएं और कुछ व्यवसायिक बीमें की योजनाएं भी आ जाती हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि इन शब्दों के अन्तर को स्पष्ट किया जाए एवं प्रत्येक के क्षेत्र के बारे में स्पष्ट रूप से विचार किया जाए। साधारणतः सामाजिक बीमा और सामाजिक सुरक्षा शब्दों को पर्यायवाची माना जाता है। इसका कारण यह है कि सामाजिक बीमा प्रत्येक सामाजिक सुरक्षा योजना का सबसे महत्वपूर्ण अंग होता है।

सामाजिक सुरक्षा की पद्धतियां या तरीके

सामाजिक सुरक्षा के दो मुख्य आधार स्तंभ होते हैं। ये हैं

1. सामाजिक सहायता
2. सामाजिक बीमा

कुछ लोग सामाजिक सुरक्षा की एक तीसरी पद्धति-सार्वजनिक या सामाजिक सेवा का भी अलग से उल्लेख करते हैं। सामाजिक सुरक्षा की इन तीनों पद्धतियों को नीचे स्पष्ट किया जाता है-

सामाजिक सहायता

सामजिक सहायता साधारणतः अल्प साधन वाले व्यक्तियों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आर्थिक सहायता के रूप में दी जाती है। सामाजिक सहायता देने के पूर्वहिताधिकारी की आर्थिक आवश्यकता का निर्धारण जीविका साधन जाँच द्वारा किया जाता है। सामाजिक सहायता नकद या प्रकार में दी जा सकती है। सामाजिक सहायता में लाभान्वित होने वाले व्यक्ति को अंशदान नही देना पडता, लेकिन उन्हे सहायता अधिकारस्वरूप मिलती है। सामाजिक सहायता में सहायता के लिए राशि पूर्णतः राज्य कोष से या राज्य द्वारा निर्धारित स्त्रोत से

आती है। सहायता हिताधिकारियों को संस्थाओं में रखकर या उनके घर में दी जा सकती है। सामाजिक सहायता का अधिकारी होने के लिए हिताधिकारियों को कानून या योजनाओं द्वारा निर्धारित शर्ता को पूरा करना आवश्यक होता है। सहायता की राशि सामान्यतः कानून या नियमों द्वारा सीमित रहती है। तथा उसमें प्राप्तकर्ता की आय, साधनों तथा संपत्ति के अनुसार परिवर्तन लाया जा सकता है। सामाजिक सहायता में हिताधिकारियों की आवश्यकता की मात्रा का निर्धारण प्रशासन द्वारा होता है। साधारणतः, इसके अन्तगत सहायता की राशि का अनुमान पहले से नही लगाया जाता।

सामाजिक सहायता कार्यक्रमों के कुछ उदाहरण हैं-

1. वार्धक्य सहायता
2. नेत्रहीनों को सहायता
3. आश्रित बालकों के लिए सहायता या भत्ता
4. स्थायी तथा पूर्ण रूप से अशक्तों को सहायता
5. अति निर्धन परिवारों को सहायता

भारत में वृद्धों, अशक्तों तथा विधवाओं के लिए सामाजिक सुरक्षा-पेंशन-योजना, दुर्घटना-अनुदान-योजना, परिवार-हितलाभ-योजना, निर्धन परिवारों की महिलाओं के लिए प्रसूति-सहायता-योजना तथा निर्धन परिवारों को आर्थिक सहायता प्रदान करने वाली अन्य योजनाएं सामाजिक सहायता के अन्तगत आती हैं।

सार्वजनिक या सामाजिक सेवा

कुछ लोग सामाजिक सुरक्षा की एक तीसरी पद्धति सार्वजनिक या सामाजिक सेवा को मानते हैं| उनके अनुसार सार्वजनिक सेवा समुदाय की निर्धारित श्रेणियों या समूहों या सारे समुदाय के सभी लोगों को राज्यकोष से प्रदान की जाने वाली सेवा के रूप में होती है। सार्वजनिक या सामाजिक सेवा के कुछ उदाहरण हैं- निःशुल्क स्वास्थ्य सेवायें तथा समाज के बाधित समूहों का पुर्नवास आदि। इन सेवाओं के लिए न तो अंशदान देने की कोई शर्त होती है और न ही पारिवारिक आय संबंधी कोई सीमाएँ। इन सेवाओं के लिए निर्धारित सेवाओं के अंतर्गत आने वाले व्यक्तियों के साथ किसी प्रकार का भेदभाव नही किया जाता। व्यवहार में कभी-कभी सार्वजनिक सेवा और सामाजिक सहायता के बीच का अन्तर स्पष्ट करना कठिन होता है।

अधिकांश देशों में सामाजिक बीमा, सामाजिक सहायता और सामाजिक सेवा के कार्यक्रम साथ-साथ चलाये जाते हैं। वास्तव में, सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों की प्रकृति और उनके अंतर्गत उपलब्ध लाभ आर्थिक विकास के स्तर से जुडे होते हैं। जो देश आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं, उनमें सामाजिक सुरक्षा विकसित अवस्था में है। निर्धन देशों में सामाजिक सुरक्षा की अधिक आवश्यकता होती है, लेकिन उनमें इनकी व्यवस्था करने के लिए आर्थिक क्षमता का अभाव रहता है।

सामाजिक बीमा

सामाजिक बीमा में बीमाकृत व्यक्तियों, विशेषकर कर्मचारियों को बेरोजगारी, वृद्धावस्था पेंशन, औद्योगिक दुर्घटना, अशक्तता, बीमारी, प्रसूति आदि तथा उनकी मृत्यु की आकस्मिकताओं की स्थिति में उनके आश्रितों को सुरक्षा प्रदान की जाती है। साधारणतः सामाजिक बीमा के अंतर्गत हितलाभ बीमाकृत व्यक्तियों तथा उनके नियोजकों के

अंशदानों से एकत्र राशि से दिए जाते हैं। कुछ व्यवस्थाओं में बीमाकृत व्यक्तियों के अंशदान भी नियोजकों से एकत्र किए जाते हैं तथा कुछ में राज्य भी अनुदान देता है। सामान्यतः सामाजिक बीमा कार्यक्रम कानून द्वारा स्थापित होते हैं। उन कार्यक्रमों में सम्मिलित किए जाने वाले हिताधिकारियों, हितलाभ की शर्तों तथा हितलाभों की मात्रा और प्रकृति का उल्लेख रहता है। सामाजिक बीमा में बीमाकृत व्यक्तियों के हितलाभ की शर्तों तथा हितलाभों की मात्रा और प्रकृति का उल्लेख रहता है। सामाजिक बीमा में बीमाकृत व्यक्तियों को हितलाभ अधिकार स्वरूप मिलता है। बीमाकृत व्यक्तियों को हितलाभ देते समय उनकी आर्थिक आवश्यकताओं या वित्तीय स्थिति को ध्यान में नहीं रखा जाता। कानून या योजना के अंतर्गत जितनी मात्रा में वे हितलाभ के अधिकारी होते हैं, उन्हें उतनी मात्रा में हितलाभ मिल जाता है। वे हितलाभ की राशि को अपनी इच्छा के अनुसार खर्च कर सकते हैं| सामाजिक बीमा में हितलाभ की राशि के निर्धारण में हिताधिकारियों द्वारा स्व-निर्णय की संभावना नहीं होती। वह कानून में ही निर्धारित कर दी जाती है। सामाजिक बीमा जीवन की औसत सामान्य आवश्यकताओं के सिद्धान्त पर आधृत होती है न कि वैयक्तिक निर्धनता की मात्रा पर। हितलाभ देते समय बीमाकृत व्यक्तियों की साधन-परीक्षा नहीं होती। सामाजिक बीमा में अनिवार्यता के तत्व होते हैं। कानून के अंतर्गत आनेवाले सभी व्यक्ति सामाजिक बीमा कार्यक्रम के अन्तर्गत अनिवार्य रूप से सम्मिलित किए जाते हैं, चाहे वे इसके लिए इच्छुक हो या नहीं। सामाजिक बीमा में योग्यता की शर्तों तथा हितलाभों का अनुमान पहले से ही लगाया जा सकता है। सामाजिक बीमा में आर्थिक सुरक्षा, प्रदर्शित आवश्यकता की जगह अनुमति आवश्यकताओं के आधार पर प्रदान की जाती है।

अमेरिकन रिस्क एंड इन्स्योरेंस एसोसिएशन ने सामाजिक बीमा की निम्नलिखित विशेषताओं पर जोर दिया है-

1. प्रायः सभी दृष्टांतों ते व्याप्ति कानून द्वारा अनिवार्य होती है।
2. साधारणतः हितलाभ के लिए अंशदान देना आवश्यक होता है। अंशदान बीमाकृत व्यक्तियों द्वारा या उनके बदले अन्य व्यक्तियों द्वारा या ऐसे व्यक्तियों द्वारा देना आवश्यक है जिन पर हिताधिकारी निर्भर हैं।
3. हिताधिकारियों के लिए अपने अपर्याप्त आर्थिक साधनों को प्रदर्शित करना आवश्यक नहीं है।
4. हितलाभ निर्धारित करने की विधि कानून में ही निहित रहती है।
5. किसी व्यक्ति को दिए जाने वाले हितलाभ साधरणतः उसके अंशदान की मात्रा से प्रत्यक्ष रूप से संबद्ध नहीं होते।
6. सामाजिक बीमा में वित्त संबंधी निश्चित दीर्घकालीन योजना रहती है।
7. सामाजिक बीमा की लागत की व्यवस्था मुख्य रूप से बीमाकृत व्यक्तियों, उनके नियोजकों या दोनों के अंशदान से होती है।
8. सामाजिक बीमा योजना का प्रशासन सरकार द्वारा और उसके पर्यवेक्षण में होता है।
9. सामाजिक बीमा योजना केवल सरकारी कर्मचारियों के लिए ही स्थापित नहीं की जाती।

सामाजिक बीमा कार्यक्रमों के कुछ उदाहरण हैं -भारत में कर्मचारी राज्य बीमा योजना तथा कर्मचारी भविष्य निधि एवं पेंशन योजनाएं, ग्रेट ब्रिटेन में राष्ट्रीय बीमा योजना, राष्ट्रीय बीमा (औद्योगिक दुर्घटना) योजना तथा राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में वृद्धावस्था, उत्तरजीवी, अशक्ता तथा स्वास्थ्य बीमा योजना और बेरोजगारी बीमा योजनाएं। सामाजिक बीमा हितलाभों के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं-

1. बीमारी हितलाभ |
2. बेरोजगारी हितलाभ|
3. प्रसूति हितलाभ |
4. वृद्धावस्था पेंशन योजना|
5. भविष्य निधि योजना |
6. आश्रित या उत्तरजीवी हितलाभ|

सामाजिक बीमा में अधिकांश हितलाभ नकद दिए जाते हैं| लेकिन कई योजनाओं में वस्तुओं या सेवाओं के रूप में भी हितलाभ देने की व्यवस्था रहती है।

भारत में श्रमिकों के लिए सामाजिक बीमा

भारत में सभी लोगों के लिए, विशेषकर देश की श्रमिक जनता के लिए सामाजिक बीमे की आवश्यकता अत्यधिक है। यह पूर्णतया सत्य है कि हमारा देश गरीब रहा है और हमारे देश में मजदूरों की मजदूरी इतनी कम है कि उससे निम्नतम आजीविका को छोडकर अन्य कोई भी वस्तुयें प्राप्त नहीं की जा सकती। अभी हाल के वर्षों में मजदूरियों में होने वाली वृद्धि के साथ ही कीमतों तथा निर्वाह खर्च में भी भारी वृद्धि हुई है। इससे मजदूरों को मजदूरी की वृद्धि का कोई अधिक लाभ नहीं मिला है। अधिकांश श्रमिक पहले की तरह ऋण के बोझ में दबे रहते है। और उनकी आय का एक बडा भाग भोजन, आवास और वस्त्र पर ही खर्च हो जाता है और संकटकाल के लिए भी वे कठिनाई से ही कुछ बचा पाने में समर्थ होते हैं। बीमारी, बेकारी, अस्थायी असमर्थता, परिवार के कमाने वाले व्यक्ति की अचानक मृत्यु जैसी अनेक विपत्तियों में या तो श्रमिक यदि सम्भव होता है तो ऋण लेता है अथवा अपने पहले से ही गिरे हुहए जीवनस्तर में वह असीम रूप से कष्ट भोगता है। इसलिये जीवन की विपत्तियों के विरूद्ध व्यवस्था करने के लिए भारत में कुछ सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की अत्यधिक आवश्यकता है क्योंकि विपत्ति पडने पर मजदूरों के पास निर्वाह के लिए कोई संचित निधि नहीं होती।

श्रमिक अनेक बीमारियों के बोझ से भी दबा रहता है। अत्यधिक भीड़-भाड वाले तथा घने बसे औद्योगिक क्षेत्रों में मलेरिया, हैजा, क्षय, प्लेग, इन्फ्लुएन्जा जैसी बीमारियां उग्र रूप से फैल जाती हैं। ऐसी बीमारियों के कारण सैकडों व्यक्ति प्रत्येक बस्ती में प्रतिवर्ष मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। शेष जो इनके आक्रमणों से बच भी जाते हैं, अनमें दुर्बलता और अकुशलता आ जाती है। औद्योगिक क्षेत्रों में श्रमिकों की उचित चिकित्सा के लिए उनको निरन्तर आय की सुविधायें प्रदान करने के लिए और बीमारियों के पश्चात् उनको शीघ्र पूर्णरूप से स्वस्थ करने के लिए काफी समय तक कोई उचित व्यवस्था नहीं थी।

बेरोजगारी तथा इसके साथ ही नौकरी से हटा दिये जाने का भय हमारे श्रमिकों के जीवन में एक अन्य विपदा है। वर्तमान समय की औद्योगिक बुराइयों में से यह सबसे निकृष्ट और विस्तृत बुराई है। इसमें निराश्रयता भिक्षावृत्ति, बाल श्रम, महिला श्रम, कम मजदूरी, वेश्यावृत्ति तथा मदिरापान जैसी सामाजिक बुराइयां उत्पन्न हो जाती हैं। जो श्रमिक अपने गांव वापस जा सकते हैं वे अपने सम्बन्धियों के अल्प साधनों पर भारस्वरूप हो जाते हैं और साधारणतः उनके गांव में वापस आने का स्वागत भी नहीं किया जाता। जो वापस नहीं जा सकते वे औद्योगिक नगरों में भूखे मरते हैं और निराश्रयता का जीवन व्यतीत करते हैं।

श्रमिक पर उस समय भी मुसीबतों का पहाड टूट पडता है जब वह अस्थायी रूप से असमर्थ हो जाता है या परिवार के मात्र रोटी कमाने वाले की मृत्यु हो जाती है। जो अपने पीछे एक विधवा व अनाथ बच्चे अथवा अन्य आश्रितों को छोड जाता है जिनकी देखभाल करने वाला कोई नही रहता, अथवा जब मजदूर पूर्णतया असमर्थ हो जाता है या अवकाश ग्रहण कर लेता है अथवा वृद्ध हो जाता है और काम के अयोग्य हो जाता है। विपत्तियों के आने पर वही कहानी दोहराई जाती है-अत्यधिक ऋण, निम्नतम जीवन स्तर, कार्यक्षमता में क्षति तथा उत्पादन में कमी और अनेक सामाजिक बुराईयां।

सामाजिक बीमा व्यवस्था के लाभ

इस बात को अस्वीकार नही किया जा सकता कि उपरोक्त विपत्तियों से बचने के लिए किसी न किसी सुरक्षा व्यवस्था की अत्यधिक आवश्यकता है। इसमें संदेह नही कि सामाजिक बीमा व्यवस्था ही भली प्रकार से श्रमिकों के जीवन की सामान्य संकटों से सुरक्षा कर सकती है। ये संकट ऐसे होते हैं जिनसे श्रमिक स्वयं अपने प्रयत्नो द्वारा रक्षा नही कर पाता। श्रमिकों के स्वास्थ्य तथा बीमा की सुरक्षा के लिए, जिसके वे अधिकारी हैं, सामाजिक बीमा ही विवेकपूर्ण और कुशल साधन है। सामाजिक बीमा योजना का लाभ यह है कि इसमें श्रमिक का सहयोग भी होता है क्योकि श्रमिकों से भी इसमें अंशदान लिया जाता है। यह निश्चित अधिकारों के आधार पर लाभ प्रदान करती है तथा लाभ प्राप्त करने वालों का आत्म सम्मान बनाये रखती है। इसका उददेश्य मजदूर की खोई हुयी कार्यक्षमता को शीघ्र से शीघ्र तथा पूर्णतया पूरा करना है | यह जीविकोपार्जन के कार्य के रूक जाने के समय मजदूर की आर्थिक सहायता करता है। हर देश के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी कार्य कर सकने योग्य जनसंख्या की नैतिक और शारीरिक शक्ति में वृद्धि करे तथा उन लोगों की देखभाल करे जो उत्पादक कार्यो के योग्य नही रहें हैं। मालिकों के व्यक्तिगत और सामूहिक प्रयत्नों , कर्मचारियों के व्यक्तिगत तथा सामूहिक आन्दोलनों तथा राज्य के पृथक-पृथक रूप से किये गये वैधानिक प्रयत्नों को संगठित और एकत्रित कर लेना चाहिए ताकि अधिक से अधिक संख्या में लोगों को अधिक से अधिक लाभ पहुँचे। इसी प्रकार के प्रयत्न सामाजिक बीमा तथा सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं को पराकाष्ठा तक पहुँचाते हैं।

कुछ व्यक्तियों का मत है कि श्रमिकों की उत्पादन प्रेरणा पर सामाजिक सुरक्षा का अच्छा प्रभाव नही होगा क्योंकि सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था उत्साह को कम करती हैं, शिथिलता उत्पन्न करती है तथा जोखिम उठाने के साहस और इच्छा को क्षति पहुँचाती है। सामाजिक सुरक्षा की व्यापक व्यवस्था में उत्पादकों की ओर से अनुत्पादकों को लाभ प्रदान किया जाता है। जो योग्य हैं और रोजगार पर लगे हैं वे उन व्यक्तियों की सहायता करते हैं, जो वृद्ध हैं, बीमार हैं और बेरोजगार हैं। परन्तु यह बात भी ध्यान रखना चाहिए कि सामाजिक सुरक्षा द्वारा जो सहायता प्रदान की जायेगी उसके कारण ऐसे बीमार और बेरोजगार व्यक्ति, जो कार्य योग्य आयु के होते हैं, फिर से उत्पादक बन सकते हैं। इसके अतिरिक्त, सामाजिक सुरक्षा द्धारा उन्हें जो भी सहायता मिलेगी वह उन्हें इस योग्य भी बना देगी कि वे अपने रोजगार को पुनः पाने पर पहले से अच्छा कार्य करें। इस सहायता के न होने पर कठोर अभावों के कारण उनकी कार्यक्षमता को बहुत क्षति पहुँचती है जैसा कि सर विलियम बेवरिज ने कहा है,"यह आवश्यक नही है कि उचित प्रकार से आयोजित, नियंत्रित तथा वित्त, व्यवस्थित, अर्थात एक समरूप सामाजिक बीमा व्यवस्था उत्पादन प्रेरणा पर बुरा प्रभाव डाले" वरन सामाजिक सुरक्षा से उत्पादन बढ सकता है क्योंकि असुरक्षा के कारण जो दुःख, भय, चिन्तायें, अभाव श्रमिकों के जीवन में आ जाते हैं और उनको जो क्षति पहुँचती है उस क्षति को सामाजिक सुरक्षा कम कर देती है। राज्य को सामाजिक सुरक्षा योजनाएं संगठित करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि सामाजिक सुरक्षा से केवल एक न्यूनतम राष्ट्रीय जीवन स्तर की ही व्यवस्था होती है ताकि प्रत्येक

व्यक्ति को ऐच्छिक प्रयत्नों द्वारा अपने तथा अपने परिवार के लिए इस न्यूनतम स्तर से अधिक अर्जित करने के लिए उत्साह तथा अवसर प्राप्त होता रहे।

सामाजिक बीमें की विभिन्न व्यवस्थायें: भारत में वर्तमान स्थिति

जो संकट श्रमिकों को उनकी अर्जित करने की क्षमता से वंचित कर सकते हैं, वे निम्न बातों से उत्पन्न हो सकते हैं- (क) बीमारी, दुर्घटना, बेरोजगारी, प्रसव काल आदि के कारण जीविका कमाने की अस्थायी अयोग्यता, (ख) स्थायी आवश्यकता जैसे- पूर्ण असर्मथता, चिरकालीन निर्बलता, वृद्धावस्था आदि, (ग) परिवार के एक मात्र रोटी कमाने वाले की मृत्यु, इसमें वैधव्य तथा अनाथ हो जाना सम्मिलित कर सकते हैं। इस प्रकार एक पूर्ण सामाजिक - बीमा व्यवस्था के निम्नलिखित भाग कहे जा सकते हैं-(1) बीमारी तथा निर्बलता बीमा, (2) दुर्घटना बीमा, (3) मातृत्व हित बीमा, (4) बेरोजगारी बीमा, (5) वृद्धावस्था बीमा, (6) उत्तरजीवी बीमा।

भारत में अब तक जो मुख्य रूप से कानूनी सुरक्षा प्रदान की गयी है, वह निम्न विषयों पर है- औद्योगिक बीमारियां तथा दुर्घटनाओं की क्षतिपूर्ति के लिये, स्त्री श्रमिकों के मातृत्व हित लाभ के लिए, स्वास्थ्य बीमा, छटनी के समय क्षतिपूर्ति तथा, प्रोवीडेन्ट फन्ड की व्यवस्था। अब हम इनमें प्रत्येक पर पृथक पृथक विचार करेंगे।

सामाजिक बीमा तथा सामाजिक सहायता में अन्तर

सामाजिक बीमा तथा सामाजिक सहायता में भी कुछ अन्तर है। सामाजिक सहायता योजना वह साधन है जिसके द्वारा राज्य अपनी ही निधि में से श्रमिकों के द्वारा कुछ विशेष शर्तें पूरी हो जाने पर कानूनी तौर पर लाभ प्रदान करता है। इस प्रकार सामाजिक सहायता सामाजिक बीमें का स्थान लेने की अपेक्षा उसका पूरक है। दोनो ही साथ साथ चलते हैं। परन्तु अन्तर यह है कि सामाजिक सहायता तो पूर्णतया सरकार का ही कार्य है जबकि सामाजिक बीमें में राज्य द्वारा केवल आंशिक रूप से वित्त प्रदान किया जाता है सामाजिक बीमें के लाभ वही व्यक्ति उठा सकते है जो इसमें अंशदान देता है। परन्तु सामाजिक सहायता निशुल्क प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त सामाजिक बीमे में किसी प्रकार की जीविका साधन जाँच पर जोर नही दिया जाता और इसके बिना ही लाभ प्रदान किये जाते हैं परन्तु सामाजिक सहायता केवल कुछ दी हुयी शर्तें पूर्ण होने पर दी जाती है। साथ ही सामाजिक बीमें में ''बीमा'' शब्द कें अन्त्रगत अंशदान का सिद्धान्त निहित है, जो कि सामाजिक सहायता में नही है। इस प्रकार ''सामाजिक'' और ''व्यावसायिक'' शब्द भी इनके अन्तर को स्पष्ट करते हैं।

यह भी स्पष्ट है कि सामाजिक सहायता तथा व्यावसायिक बीमा के मध्य में ''सामाजिक बीमा'' आता है। सामाजिक सहायता में राज्य या समुदाय द्वारा अभीष्ट व्यक्तियों को निशुल्क सहायता दी जाती है, जबकि व्यावसायिक बीमा पूर्णतः एक निजी संविदा है। सामाजिक बीमें में राज्य तथा बीमा किये हुये व्यक्ति, दोनों का अंशदान आवश्यक होता है। इसलिए यह दोनों के मध्य का मार्ग कहा जा सकता हैं।

सामाजिक बीमा, सामाजिक सुरक्षा तथा सरकारी सुरक्षा के बीच भी भेद किया जाता है। सामाजिक बीमा जहाँ अंशदान पर आधारित होता है और सामाजिक सहायता आकस्मिक परिस्थितियों पर आधारित होती है, वहाँ सरकारी सहायता आवश्यकता पर आधारित होती है। सरकारी सहायता से आशय राज्य द्वारा इस उत्तरदायित्व की स्वीकृति से है कि वह अपने सभी नागरिकों को एक न्यूनतम जीवन स्तर की सुविधाएं उपलब्ध करायेगा। आधुनिक राज्य कदापि इस बात की अनुमति नही दे सकता कि उसका कोई नागरिक भूख या भुखमरी से मरे। राज्य के लिये आज यह अनिवार्य माना जाता है कि वह अपने नागरिकों को जीवन की मूलभूत आवश्यक वस्तुयें उपलब्ध कराये।

सामाजिक सहायता तथा सामाजिक बीमा

सामाजिक सहायता सरकार द्वारा दी जाने वाली राशि है जिसका उददेश्य संकट के समय सहायता करना है। यह लाभ की मात्रा सरकार द्वारा करों तथा सामान्य आय के साधनों से जुटायी जाती है तथा अभावग्रस्त व्यक्तियों में बाँटी जाती है। सहायता प्राप्त करने वाला व्यक्ति प्रत्यक्ष किसी प्रकार का अंशदान नही देता।

सामाजिक बीमा एक ऐसी विधि है जिससे अल्प आय वाले वर्गों को लाभान्वित किया जाता है। यह लाभ अधिकार के रूप में प्राप्त होता है। इसके लिए आवश्यक राशि सभी वर्गो सें एकत्रित की जाती है। इस अंशदान में कर्मचारी, नियोक्ता तथा सरकार का सहयोग होता है। सर विलियम बैवरिज ने सामाजिक बीमा को परिभाषित करते हुये कहा है, "यह योजना अंशदान के बदले में दिया जाने वाला वह लाभ है जो जीविका निर्वाह स्तर के लिए देय है तथा अधिकार के रूप में, बिना किसी साधन जाँच के देय है, जिससे व्यक्ति अपना निर्वाह स्वतंत्रता से कर सके।"

यदि हम उपर्युक्त परिभाषा का विश्लेषण करें तो कई सामान्य विशेषताएँ प्रकट होती हैं:

(1) सामाजिक सहायता तथा सामाजिक बीमा ये दोनों योजनाएँ अल्प साधन वाले व्यक्तियों को जोखिमों तथा आकस्मिक घटनाओं से होने वाली पीडा सें मुक्ति दिलाने का कार्य करती हैं।

(2) यह राशि कर्मचारियों के अधिकार के रूप में प्राप्त होती है।

(3) इससे कर्मचारी के स्वाभिमान की हानि नही होती है।

(4) दोनों योजनाओं के अंतर्गत देय लाभ गणना पर आधारित होते हैं तथा न्यायिक दृष्टि से देय है।

दोनों योजनाओं के उददेश्य में समानता होते हुये भी उनकी क्रियान्विति अलग-अलग प्रकार से होता है जिसका विवरण निम्नलिखित है :-

1. सामाजिक सहायता कार्यक्रम में धन एक्रत्र नही किया जाता है, वह केवल सरकार या नियोक्ता द्वारा कर्मचारी को दिया जाता है। यह सहायता व्यक्ति की आय के साधनों पर विचार किये बिना प्रदान की जाती है। सामाजिक बीमा निश्चित रूप से पारस्परिक अंशदान पर आधारित है।
2. सामाजिक सहायता अभावग्रस्त व्यक्तियों के प्रति सरकार के उत्तरदायित्व का द्योतक है जबकि सामाजिक बीमा, जोखिम को सामूहिक रूप से वहन करने का साधन है।
3. सामाजिक सहायता की सम्पूर्ण राशि राज्यकोष से अथवा नियोक्ता से प्राप्त होती है जबकि सामाजिक बीमा कार्यक्रम त्रिपक्षीय (सरकार, नियोक्ता, सेविवर्गीय) अंशदान पर आधारित है।
4. सामाजिक बीमा एक वैज्ञानिक उपाय है जिससे बडी जोखिम का बँटवारा बडे समुदाय में करना सम्भव होता है जबकि सामाजिक सहायता मे मानवीय दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी जाती है।
5. सामाजिक बीमा कार्यक्रम के अंतर्गत सहायता प्राप्त करने वाला व्यक्ति अपने आप को किसी प्रकार हीन अनुभव नही करता है, वह अधिकार स्वरूप लाभ प्राप्त करता है जबकि सहायता कार्यक्रम में कर्मचारी का कोई अंशदान नही होता, अतः श्रमिक हीन भावना अनुभव करता है।
6. सामाजिक बीमा कार्यक्रम के अंतर्गत लाभ स्वीकृत करने की दशा में इस बात पर विचार किया जाता है कि श्रमिक का अंशदान जमा है अथवा नही, किन्तु सामाजिक सहायता के कार्यक्रम में इसकी आवश्यकता नही है।

7. सामाजिक बीमा कार्यक्रम के अंतर्गत जोखिम तथा अंशदान में एक उचित अनुपात रखा जाता है। सामाजिक सहायता कार्यक्रम में किसी प्रकार का संबंध होना आवश्यक नही हैं।

8. सामाजिक बीमा कार्यक्रम सामान्यतः वहाँ लागू किये जाते हैं जहाँ श्रमिक संगठित तथा वित्तीय दृष्टि से सजग तथा सबल हों। जबकि सामाजिक सहायता कार्यक्रम, गरीब असंगठित अंशदान देने में असमर्थ, अशिक्षित अथवा बीमा योजना को समझने में असमर्थ कर्मचारियों को लाभ देते हैं।

9. सामाजिक सहायता कार्यक्रम नियोक्ता या सरकार की इच्छा तथा बजट प्रावधान पर निर्भर करते हैं इससे नियमितता नही रह पाती| किन्तु सामाजिक बीमा सामाजिक कार्यक्रम में स्थायी अंशदान कें आधार पर निश्चित कोष का निर्माण होता है।

10. सामाजिक सहायता प्राप्त करने के लिए कतिपय शर्तों को पूरा करना आवश्यक होता है, इसमें साधन जाँच का महत्व है, किन्तु सामाजिक बीमा में साधन जाँच नही की जाती है।

11. सामाजिक बीमा योजना में उन सभी घटनाओं पर लाभ दिया जाता है जो योजना में सम्मिलित है।

9.4 सारांश (Summery)

सामाजिक सहायता, सामाजिक बीमा एवं सामाजिक प्रतिरक्षा से सम्बन्धित प्रावधानों का ज्ञान एक सामाजिक कार्यकर्ता के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इन अवधारणाओं के ज्ञान का उपयोग सामाजिक कार्यकर्ता को निरंतर करते रहना पड़ता है इसलिए इनकी स्पष्ट समझ आवश्यक है। उक्त अवधारणाएं सामाजिक सुरक्षा की व्यापक अवधारणा के अन्तर्गत समाहित हैं। जहां सामाजिक सहायता के अन्तर्गत व्यक्तियों को अपने न्यूनतम जीवन स्तर को बनाये रखने के लिए नकद एवं वस्तु के रूप में वाह्य सहायता भी प्रदान की जाती है। इसमें सहायता का उत्तरदायित्व कुछ प्रमुख नागरिक संगठनों के द्वारा उनके आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रदान की जाती है। जबकि सामाजिक बीमा व्यक्ति के जीवन में उत्पन्न आकस्मिकताओं का सामना करने में सहायक होता है इसमें व्यक्ति को कुछ अंशदान करना भी आवश्यक होता है। इन कार्यक्रमों के माध्यम से व्यक्ति को उसके जीवन के उतार-चढ़ाव का सामना करने में मदद मिलती है

9.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions for Practice)

1. सामाजिक बीमा से आप क्या समझते हैं? यह लोगों को किस प्रकार सहायता प्रदान करता है?

2. सामाजिक सुरक्षा से आप क्या समझते हैं?

9.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

1. अहमद रफीउद्दीन मिर्जा, समाज कार्य दर्शन एवं प्रणालियां, शाइनिंग प्रेस लखनऊ, 2004

2. सिंह, सुरेन्द्र, पी.डी. मिश्र, समाज कार्य: इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियां, न्यू राॅयल बुक कम्पनी लखनऊ, 2010

3. मदन जी0आर., अमित अग्रवाल, परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन दिल्ली, 2012

4. सिंह मंजीत, व्यावसायिक समाज कार्य का आविर्भाव, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008

5. भारत 2011, प्रकाशन विभाग नई दिल्ली

6. Friedlander, W.A., Introduction to Social welfare.

इकाई-10

सामाजिक प्रतिरक्षा

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य (Objectives)

10.1 प्रस्तावना (Preface)

10.2 भूमिका (Introduction)

10.3 सामाजिक प्रतिरक्षा (Social Defence)

10.4 सारांश (Summary)

10.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Question for practice)

10.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (Refrences)

10.0 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

1. सामाजिक प्रतिरक्षा के बारे में जान सकेंगे।
2. सामाजिक प्रतिरक्षा का समाज कार्य में आशय को समझ सकेंगे |
3. सरकारी स्तर पर सामाजिक प्रतिरक्षा की संरचना का वर्णन कर सकेंगे |
4. समाज कार्य में इसकी उपयोगिता का प्रयोग कर सकेगें|
5. सामाजिक प्रतिरक्षा के अंतर्गत आये विभिन्न प्रकार के कल्याणों के विषय में चर्चा क्र सकेगें|
6. सामाजिक सुधार एवं सामाजिक प्रतिरक्षा में संस्था कि भूमिका का वर्णन क्र सकेंगे |

10.1 प्रस्तावना (Preface)

सामाजिक प्रतिरक्षा लोगों के कल्याण, उपचार तथा नियमों के साथ संघर्ष के रूप में दिखायी देता है। यह इसका संकुचित अर्थ है व्यापक अर्थो में सामाजिक प्रतिरक्षा की अवधारणा का उपयोग समाज के अन्रतगत नियंत्रण के उपाय, अपराध का सम्पूर्ण निवारण करने से सम्बन्धित उपाय तथा समाज में चिकित्सकीय एवं पुर्नवास की योजनाओं को उपलब्ध करवाना है।

10.2 भूमिका (Introduction)

सामाजिक प्रतिरक्षा बाल अपराध, मुक्त किये गये कैदियों ,मादक द्रव्यों का उपयोग करने वाले तथा भिक्षुकों आदि के उपचार एवं पुर्नवास से संबंधित सेवायें सम्मिलित होती हैं। यह समाज कार्य अभ्यास का एक वृहद क्षेत्र है। जिसमें समाज कार्य की प्राथमिक प्राणालियों का उपयोग कर व्यक्तियों ,संस्थाओं, एवं समुदाय को सहायता प्रदान की जाति है ,जिस कार्य को पूर्ण करने के लिए समाज कार्य की द्वितीयक प्राणालियों की सहायता ली जाति है |

10.3 सामाजिक प्रतिरक्षा (Social Defence)

समाज प्रतिरक्षा सेवाएं अपराध की रोकथाम के लिये कार्यक्रम बनाती है, साथ ही अपराधियों को संस्थात्मक तथा गैर-संस्थात्मक सेवाओं के माध्यम से समाज के स्वस्थ और उपयोगी सदस्य बनाकर उनका पुनर्वास भी करती है। समाज प्रतिरक्षा के मुख्य क्षेत्र ये हैं-बाल अपराधों की रोकथाम और उन पर नियंत्रण, महिलाओं और लडकियों के अनैतिक देह व्यापार को समाप्त करना, भिक्षावृत्ति को रोकना, कैदियों का कल्याण, नशाखोरी को रोकना इत्यादि। केन्द्रीय स्तर पर गृह मंत्रालय न्यायपालिका, पुलिस, जेलों और अपराध विषयक विधि नियमों को अपने दायरे में लेता है, और मानव कल्याण मंत्रालय का सम्बन्ध उन कार्यक्रमों से है जो इन विषयों से जुडे हैं-बाल अपराध, कारावासों में कल्याण सेवाएं, अनैतिक देह व्यापार को समाप्त करना, भिक्षावृत्ति पर काबू पाना, उत्तर परिचर्या सेवाएं तथा सुधारात्मक प्रशिक्षण और शोध। समाज प्रतिरक्षा सेवाओं का प्रशासन प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारों के दायरे में आता है। समाज प्रतिरक्षा के क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार की मुख्य भूमिका यह रहती है कि वह प्रान्तीय सरकारों की कार्य प्रणालियों में सामंजस्य स्थापित करे, तैयार करें तथा समाज प्रतिरक्षा के क्षेत्र में प्रशिक्षण और शोध को आगे बढाए। लोगों को कष्ट देने वाली मुख्य सामाजिक बुराइयां और उन्हें दूर करने के लिये केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों तथा स्वैच्छिक संस्थाओं के द्वारा उठाये गये कदमों में अपराधियों का उपचार करना तथा उनका पुनर्वास करना जरूरी है। सामाजिक प्रतिरक्षा के लिये निम्नलिखित क्षेत्रों में कार्यवाहियां की जाती है-

बाल अपराध

बाल अपराधियों की संख्या में वृद्धि के कई कारण हैं जैसे -निर्धनता और पारिवारिक जीवन का विश्रृंखलन, सामाजिक नियंत्रण में गिरावट, योग्य अवसरों का अभाव और फलस्वरूप होने वाली निराशा, परस्पर-विरोधी विचारों और मूल्यों का होना और सहज धन प्राप्ति। भारतीय जेल समिति 1919-20 के अनेक अनुमोदनों पर अनेक प्रान्तीय सरकारों ने 1920 से शिशु विधिनियमों को बनाया, ताकि अपराधी शिशुओं के कारावास, अभियोग और सुधारात्मक उपचार के लिये उन्हें विशिष्ट सुविधाएं प्रदान की जा सकें। 1960 ई0 में भारत सरकार ने बाल अधिनियम बनाया था ताकि राज्यों में उनका कियान्वयन किया जा सके। इसमें यह प्रावधान था कि बाल न्यायालयों में उन बच्चों की सुनवाई हो जिन्हें अपराध कानून का उल्लंघन करने के कारण पुलिस के द्वारा पकडा गया था। इसी तरह बाल कल्याण मंडल अनाथ, उपेक्षित और नियंत्रण से बाहर हुए बच्चों के साथ व्यवहार करने के लिए उत्तरदायी था। इन संस्थाओं का उद्देश्य बच्चों को दण्ड देना नहीं था, किन्तु उनकी सहायता करना था। बाल कानून का काम बालकों को तब तक निरीक्षण घरों में रखना होता था जब तक कि बाल न्यायालय या बाल कल्याण मंडल के द्वारा उनके अभियोगों का निपटारा न हो जाए। उन्हें प्रौढ अपराधियों के साथ जेलों में इसलिये नहीं रखा जाता था ताकि उन पर उन अपराधियों का प्रभाव न पड सके। लम्बी अवधि तक उनहें प्रमाणित,

अनुमोदित, विशेष औद्योगिक स्कूलों और बोर्सटल संस्थाओं में उपचार और प्रशिक्षण के लिये रखा जाता था ताकि उनका सुधार करके उन्हें पुनर्वासित किया जा सके।

भारत सरकार ने 1986 में बाल न्याय अधिनियम बनाया था ताकि पिछले सारे प्रान्तीय बाल अधिनियमों को समेंकित कर एक नई व्यवस्था बनाई जा सके। इस अधिनियम के अनुसार उपेक्षित बच्चों की देखभाल, उपचार, विकास और पुनर्वास करना था। इस नये कानून के अन्तर्गत दुरूपयोग, शोषण और सामाजिक अव्यवस्था की स्थितियों में शिशुओं को न्याय दिलाने में एक वृहद् योजना बनाने का विधान है। जम्मू कश्मीर को छोडकर शेष सारे भारत में यह ऐक्ट 2 अक्टूबर, 1987 से सारे भारत में लागू है।

बन्दियों का कल्याण

कारागारों को अब सजा के स्थान न समझ कर सुधार गृह के रूप में देखा जाने लगा है। भारतीय जेल समिति (1919-20) ने घोषणा की थी कि कारावास का अन्तिम लक्ष्य कैदियों का सुधार और पुनर्वास है। 1957 में गृह मंत्रालय के द्वारा नियुक्त की गई आल इण्डिया जेल मैनुअल समिति ने भी सुझाव दिया था कि एक मॉडल जेल मैनुअल के साथ-साथ जेल तथा प्रशासन के कुछ व्यापक मानदण्डों और निर्देशों को ध्यान में रखा जाए। 1972 में मंत्रालय के द्वारा स्थापित वर्किंग ग्रुप ने जेलों में भीडभाड, कैदियों को प्रशिक्षण और जेल में सुविधाओं को अधिक अच्छा बनाने के लिये प्रान्तीय सरकारों को वित्तीय सहायता प्रदान करने का अनुमोदन किया था। (सेवानिवृत्त) न्यायमूर्ति ए0एन0 मुल्ला की अध्यक्षता में 1980 में केन्द्रीय सरकार के द्वारा एक उच्च स्तरीय जेल सुधार समिति गठित की गई थी जिसका दायित्व था कि वह भारतीय जेलों की विविध समस्याओं पर गौर करे और व्यावहारिक सुधारवादी कदमों का सुझाव दे। उस समिति ने मार्च, 1983 में अनेक अनुमोदनों के साथ अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था। सभी समितियों ने सहमति से ये बातें पारित की कि कैदियों का उनके अपराधों के रिकार्डों के अनुसार वर्गीकरण हो, जेलों में भीडभाड को दूर किया जाए, प्रोबेशन और पैरोल का अधिक व्यापक प्रयोग किया जाए, जेल से रिहा कैदियों की बाद में देखभाल और उनके पुनर्वास इत्यादि की व्यवस्था की जाए।

अपराधियों का परिवीक्षा अधिनियम -1958, (Probation of Offenders Act)जो जम्मू कश्मीर, नागालैण्ड, सिक्किम और लक्ष्यद्वीप को छोडकर सारे देश में लागू होता है, अपने क्षेत्र में बडा व्यापक है और यह न्यायालयों को अधिकार देता है कि वे सभी उपयुक्त मामलों में एक अपराधी को किसी ऐसे अपराध करने पर जिससे उसे मृत्युदण्ड या आजीवन कारावास पर रोक लगा दे। ऐसे अपराधियों को प्रोवेशन की अवधि तक प्रोबेशन अफसर की निगरानी में रखा जाये ताकि प्रोबेशन के विकास को प्रोत्साहन प्रदान किया जा सके। सन् 1971 को प्रोबेशन वर्ष के रूप में मनाया गया और तब से प्रोबेशन के तरीके का सबसे अधिक व्यापक रूप में उपयोग हुआ है। सन् 1987-88 में केन्द्र के तत्वाधान में जेलों को सुधारने की एक योजना को अन्तिम रूप दिया गया था। उसके ये उद्द्देश्य हैं-

१. उन संस्थात्मक अपराधियों के मामलों को पहचानना, जिन्हें लम्बी देखभाल, सुरक्षा और सहायता की अपने छूटने के बाद समाज या समुदाय में आवश्यकता है।

२. सुधारात्मक प्रक्रिया के आवश्यक अंग के रूप में जेल में बर्ताव और समाज में रहन-सहन के मध्य एक कडी प्रदान करना।

३. भूतपूर्व कैदियों के समुदाय या समाज के आत्मनिर्भर व्यक्तियों के रूप में पुनर्गठन के लिये संसाधन जुटाना।

४. उन भूतपूर्व कैदियों को आश्रय, देखभाल और मार्ग निर्देशन देना जिन्हें अच्छे नागरिक के रूप में जीवनयापन के लिये सहायता और आर्थिक सुरक्षा अथवा व्यक्तिगत संसाधनों की जरूरत है।

स्त्रियों और लडकियों के अनैतिक व्यापार प्रतिषेध अधिनियम

यह अधिनियम 1956 में संसद के द्वारा पारित हुआ और इस विषय में सभी प्रान्तीय ऐक्टों को हटाकर 1958 में सारे देश में लागू किया गया। इस ऐक्ट का मुख्य उद्देश्य जीवकोपार्जन के एक संगठित माध्यम के रूप में वेश्यावृत्ति की व्यापारिकता को दबाना। इस ऐक्ट में वेश्यावृत्ति के अड्डे चलाने वाले के लिए, वेश्यावृत्ति से रोजी-रोटी कमाने वाले के लिए, स्त्रियों और लडकियों को उन स्थानों पर ले जाने के लिये जहां वेश्यालय हैं, सार्वजनिक स्थानों पर वेश्यालय चलाने वाले के लिये और वेश्यावृत्ति के लिये किसी को उकसाने या फुसलाने वाले के लिये कठोर दण्ड का प्रावधान है। इस ऐक्ट के प्रावधानों को लागू करने के लिये विशेष पुलिस अधिकारियों और गैर अधिकारी सलाहकार समितियों की स्थापना का भी विधान है।

वेश्यावृत्ति से बचाई गई महिलाओं और लडकियों की देखभाल, सुरक्षा और पुनर्वास के लिये संरक्षागृह बनाये गये हैं। इन गृहों के वासियों को अनेक तरह की दस्तकारी का प्रशिक्षण दिया जाता है और उन पर ऐसे अनुशासनात्मक और नैतिक प्रभाव डाले जाते हैं जिनसे उनका सुधार हो तथा उन्हें पुनर्वासित करने में मदद मिले। इस ऐक्ट में कुछ त्रुटियां थीं। 1978 में लॉ कमीशन के द्वारा इस ऐक्ट में संशोधन किया गया ताकि इसे और प्रभावी बनाया जा सके। इस बुराई को समाप्त करने के लिये समाज का सहयोग बहुत जरूरी है। समाज को नैतिक तौर पर स्वस्थ बनाने के लिये अनेक तरह की रोकथाम सेवाओं के लिये कल्याण मंत्रालय स्वैच्छिक संस्थाओं की मदद करता है।

भिक्षावृत्ति विरोधी कार्यक्रम

भिक्षावृत्ति सारे देश में इस हद तक व्यापत है कि इस बुराई को दूर करने के लिये किये गये सभी प्रयास विफल हुए हैं। सभी सम्प्रदायों के धार्मिक स्थलों सार्वजनिक स्थानों, बस अड्डों, रेलवे स्टेशनों, दुकानों, सडकों, गलियों और पर्यटन केन्द्रों पर भिखारियों की उपस्थित भीड़ एक शर्मनाक दृश्य उपस्थिति करती है जो मूल नागरिकों और विदेशी पर्यटकों को भी परेशान करती है। भिक्षावृत्ति केवल हमारे सामाजिक-आर्थिक अभाव का ही परिणाम नहीं है। बल्कि यह हमारी परम्परागत, सांस्कृतिक और धार्मिक प्रवृत्तियों से पैदा हुई मजबूरियों का परिणाम भी है। कुछ भिखारी पेशेवर होते हैं, कुछ अपनी इच्छा से भिखारी बनते हैं और कुछ आदतन भीख मांगते हैं इस प्रकार के भिखारियों को उनके सुधार और पुनर्वास के लिये सामाजिक सहायता अपेक्षित है। कुछ भिखारी शारीरिक तौर पर विकलांग, बीमार, बूढे और असहाय होने के कारण भीख मांगते हैं इस प्रकार के भिखारियों को समाज सुरक्षा पद्धति की आवश्यकता है| हमारे संविधान के सातवें अनुसूची में जो सूचियों दी गई हैं, उनमें भिक्षावृत्ति का कहीं विशेष उल्लेख नहीं है। विधि मंत्रालय का सुझाव है कि इस समस्या का समाधान प्रान्तीय/यू0टी सरकारों द्वारा ही होना चाहिये। बहुत से प्रान्त और उपराज्य अपने प्रान्तीय कानूनों से ही भिक्षा विरोधी कार्यक्रम चलाते हैं। भिक्षावृत्ति को रोकने के लिये केन्द्रीय सरकार ही व्यापक नियम बनाये जो प्रान्तीय और उपराज्यीय सरकारों द्वारा भी पालन किये जाए ताकि सर्वत्र एकसमानता रहे और उन नियमों का सख्ती से पालन हो। इस क्षेत्र में स्वैच्छिक संस्थाओं और समाज की पूर्ण सहायता अधिकाधिक रूप में प्राप्त की जानी चाहिए ताकि इस समस्या का सम्भव समाधान हो सके।

उत्तर परिचर्या सेवायें

कैद से छूटे कैदियों और बाल अपराध संस्थाओं में रहने वालों के समुचित पुनर्वास के लिये अनिवार्य हैं। कुछ प्रदेशों ने बाद के लिये देखरेख घर और जिला आश्रय स्थल स्थापित किये हैं जहां भूतपूर्व कैदी और विकलांग अल्पावधि के लिये दाखिल किये जाते हैं। अपराधियों की बाद वाली संस्थागत देखभाल तभी हो सकती है जबकि उनके छूटने के बाद उनके पुनर्वास के लिये वित्तीय सहायता प्रदान की जाए। स्वैच्छिक संस्थाओं तथा समाज समुदाय की भागीदारी और सक्रिय सहयोग से इस सुविधा को प्रदान करने में वृद्धि की जरूरत है।

सामाजिक प्रतिरक्षा की राष्ट्रीय संस्था

1957 आल इण्डिया जेल मैनुअल कमेटी ने कुछ अनुमोदन किये थे। उनको दृष्टि में रख कर 1961 में केन्द्रीय सरकार के गृह मंत्रालय ने सेन्ट्रल ब्यूरो आफ कोरैक्शनल सर्विसेज की स्थापना की थी ताकि समाज प्रतिरक्षा के क्षेत्र में सेवाओं का सामंजस्य, विकास और उच्च स्तर किया जा सके।

सामाजिक प्रतिरक्षा की राष्ट्रीय संस्था के कार्य

संस्था को सौंपे गये कार्य ये हैं: समाज प्रतिरक्षा पर शोध करना। समाज प्रतिरक्षा आंकडों को इकट्ठा करना और फिर उनका विश्लेषण करना। समाज प्रतिरक्षा के क्षेत्र में प्रशिक्षण का विकास करना। समाज प्रतिरक्षा के क्षेत्र में आदर्श विधेयक और नियमों का निर्माण करना। केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों/प्रशासन को समाज प्रतिरक्षा समस्याओं पर सलाह देना और योजनाओं के तैयार करने, कार्यक्रमों को निश्चित करने, विधायक बनाने इत्यादि कार्यों में तकनीकी सेवाएं प्रदान करना। समाज प्रतिरक्षा के विषय में प्रान्तीय और स्वैच्छिक संस्थाओं को जानकारी के विनिमय के लिये एक मंच प्रदान करना और इस तरह समाज प्रतिरक्षा के क्षेत्र में जानकारी के लिये एक क्लीयरिंग हाउस का काम करना। समुदाय या समाज की रोकथाममूलक और पुनर्वासात्मक भूमिका के विषय में समाज प्रतिरक्षा समस्याओं पर जन जागृति पैदा करना। दूसरे देशों के साथ तथा संयुक्त राष्ट्र या दूसरी विशिष्ट एजेंसियों के साथ समाज प्रतिरक्षा पर जानकारी के विनिमय के लिये भारत सरकार को सहायता देना। समाज प्रतिरक्षा पर उचित ध्यान देने के लिये विश्वविद्यालयों, शोध संस्थाओं और स्वैच्छिक संस्थाओं के साथ तालमेल स्थापित करना। समाज प्रतिरक्षा पर कांफ्रेंसों/भाषणों, कार्यशालाओं आदि का आयोजन करना। समाज प्रतिरक्षा के क्षेत्र में साहित्य का प्रकाशन करना।

सामाजिक प्रतिरक्षा की राष्ट्रीय संस्था का संगठन

समाज प्रतिरक्षा संस्था कल्याण मंत्रालय का एक अधीनस्थ कार्यालय है जो उसे नीति निर्देशन प्रदान करता है। अपराधों की रोकथाम और अपराधियों के साथ व्यवहार के क्षेत्र में यह केन्द्रीय परामर्श समिति का कार्य करती है। यह एक निदेशक के नियंत्रण में कार्य करती है। यह समाज प्रतिरक्षा के अनेक क्षेत्रों में, जिनमें कैदियों की भलाई, जेल सुधार और प्रशासन, शिशु अपराध, प्रोबेशन भीख, सामाजिक और नैतिक स्वास्थ्य, अल्कोहल, जुआ, आत्महत्या, नशाखोरी इत्यादि शामिल हैं, कार्यरत रहकर अपनी सेवाएं प्रदान करती हैं। संस्था का संगठन साथ में संलग्न चार्ट में दिखाया गया है। इसके कार्यों को तीन बडे विभागों में बांट सकते हैं-

1. शोध, पुनरीक्षण और आंकडों से सम्बन्धित विभाग

समाज प्रतिरक्षा के विविध पहलुओं से सम्बन्धित आंकडों और वास्तविक जानकारी को प्राप्त करता है। यह प्रोबेशन सेवाओं, भिक्षा विरोधी कार्यक्रमों तथा शिशु ऐक्टों के अन्तर्गत चल रही संस्थाओं से सम्बन्धित आंकडों को एकत्र करता है। यह समाज प्रतिरक्षा समस्याओं से सम्बन्धित कार्य का पुनरीक्षण और मूल्यांकन भी करता है।

2. प्रशिक्षण विभाग

यह देश के विभिन्न भागों में प्रान्तीय सरकारों, उपराज्य प्रशासनों, विश्वविद्यालयीय विभागों और मुख्य स्वैच्छिक संस्थाओं के सहयोग से समाज प्रतिरक्षा के क्षेत्र में कार्यकर्ताओं के अनेक वर्गों को प्रशिक्षण प्रदान करता है। प्रशिक्षण कार्यक्रमों के द्वारा जिन विशिष्ट क्षेत्रों को लिया जाता है, उनमें स्वैच्छिक सहभागिता, समाज प्रतिरक्षा प्रोबेशन और उससे सम्बद्ध तरीके, नशाखोरी और शराब का निषेध, शिशु अपराधों पर नियंत्रण, जेल प्रशासन आदि शामिल हैं। यह विभाग समाज प्रतिरक्षा और समाज विकास के अनेक विषयों पर भाषण, सेमिनार और सम्मेलन करवाता है।

3. सामान्य सेवाएं व सुविधाएं विभाग

संस्था के वित्तीय प्रशासन तथा हाउस कीपिंग कार्यों से सम्बद्ध रखता है। यह केन्द्र और प्रदेशों में किये जाने वाले कार्यक्रमों को सहायक सेवाएं प्रदान करता है। यह संस्था में प्रशिक्षण लेने वालों तथा अध्यापकों के लाभ के लिये पुस्ताकालय, प्रदर्शनी आदि की सुविधाएं प्रदान करता है।

राष्ट्रीय स्तर पर समाज प्रतिरक्षा की राष्ट्रीय संस्था को समाज प्रतिरक्षा के क्षेत्र में प्रशिक्षण को बढाने इत्यादि का काम सौंपा गया है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये यह संस्था अनेक लघु अवधि के प्रशिक्षण शिविर आयोजित करती है। उनके कार्यक्रम अनेक क्षेत्रों में विस्तृत हैं, जैसे सुधारात्मक प्रशासन, समाज प्रतिरक्षा में न्यायपालिका की भूमिका, सुधारात्मक आंकडे और शोध, जेल प्रशासन, प्रोबेशन और इससे जूडें तरीके, अपराधों पर नियंत्रण, वेश्यावृत्ति को दबाना, नशीले पदार्थों और अल्कोहल वाले पदार्थों के सेवन को रोकना तथा समाज प्रतिरक्षा में स्वेच्छा से भाग लेना। यह संस्था प्रति वर्ष 30 से 40 तक के सेमिनार और प्रशिक्षण शिविर लगाती है और इसकी सहायता के लिये प्रान्तीय सरकारें, उपराज्य प्रशासन, विश्वविद्यालयों के विभाग, समाज कार्य के स्कूल तथा समाज विज्ञान की संस्थाएं काम करती हैं।

10.4 सारांश (Summary)

सामाजिक प्रतिरक्षा के अन्र्तगत समाज के विभिन्न प्रकार के विचलनों के विरूद्ध संरक्षण प्रदान करने से है। ये विचलन समाज में विभिन्न प्रकार के संघर्ष उत्पन्न कर देते हैं जैसे - साम्प्रदायिकता, जातिवाद, अपराध आदि। अतः सामाजिक प्रतिरक्षा के उपाय समाज में विघटनकारी शक्तियों के विरूद्ध स्वयं की रक्षा और कानून व्यवस्था को बनाये रखने के लिए किये जाते हैं। इसमें अपराधियों के इस उद्देश्य से उपचार और पुर्नवासन और उपाय शामिल होते हैं जिससे व्यक्ति मानव जीवन गरिमायुक्त व्यतीत कर सके।

10.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Question for practice)

1.सामाजिक प्रतिरक्षा से आप क्या समझते हैं?

2. सामाजिक प्रतिरक्षा की राष्ट्रीय संस्था के कार्य कलापों को विस्तार से समझाइए |

3. सामाजिक प्रतिरक्षा संस्था के कार्य की चर्चा कीजिये |

4. सामाजिक प्रतिरक्षा के बंदियों का कल्याण हेतु क्या प्रावधान किये गए है |

5. सामाजिक प्रतिरक्षा के अंतर्गत बाल कल्याण के उपायों को समझाइए |

6.स्त्रियों और लडकियों की सुरक्षा हेतु अनैतिक व्यापार प्रतिषेध अधिनियम के क्या प्रावधान है ? विस्तार से समझाइए |

10.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (Refrences)

1. अहमद रफीउद्दीन मिर्जा, समाज कार्य दर्शन एवं प्रणालियां, शाइनिंग प्रेस लखनऊ, 2004
2. सिंह, सुरेन्द्र, पी.डी. मिश्र, समाज कार्य: इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियां, न्यू राॅयल बुक कम्पनी लखनऊ, 2010
3. सचदेवा डी.आर., भारत मंे समाज कल्याण प्रशासन, किताब महल, इलाहाबाद, 2007
4. मदन जी0आर., अमित अग्रवाल, परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन दिल्ली, 2012
5. सिंह मंजीत, व्यावसायिक समाज कार्य का आविर्भाव, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008
6. सूदन, सिंह कृपाल समाज कार्य: अभ्यास एवं सिद्धान्त न्यू राॅयल बुक पब्लिकेशन लखनऊ
7. भारत 2011, प्रकाशन विभाग नई दिल्ली।
8. Friedlander, W.A., Introduction to Social welfare.

इकाई-11

ग्रामीण एवं नगरीय विकास

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य (Objectives)

11.1 प्रस्तावना (Preface)

11.2 भूमिका (Introduction)

11.3 ग्रामीण एवं नगरीय विकास (Rural and Urban development)

11.4 सारांश (Summary)

11.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Question for Practice)

11.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

11.0 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

1. ग्रामीण विकास के बारे में जान सकेंगे।
2. शहरी विकास की अवधारणा को समझ सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना (Preface)

ग्रामीण विकास का अर्थ गांवों का विकास या प्रगति है। सामान्यतः ग्राम्य विकास को सामुदायिक विकास का पर्याय समझा जाता रहा है। सामुदायिक विकास के अर्थ को स्पष्ट करते हुए यह कहा गया है कि सामुदायिक विकास एक ऐसी योजना है जिसके द्वारा नवीन साधनों की खोज करके ग्रामीण समाज के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में परिवर्तन लाया जा सकता है। चूंकि समाज कार्य के विकासात्मक प्रकार्यों के अन्तर्गत ग्रामीण एवं नगरीय विकास से सम्बन्धित कार्य भी किया जाता है जिन्हें करने में समाज कार्य का ज्ञान विकास कार्यकर्ताओं के लिये अत्यन्त उपयोगी होता है। सामाजिक कार्यकर्ता समुदायों से सम्बन्ध स्थापित करने में अत्यन्त निपुण होते हैं जिसके कारण वे ग्रामीण एवं नगरीय विकास से सम्बन्धित कार्यक्रमों एवं योजनाओं की जानकारी समुदाय तक पहुंचाते हैं तथा परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिकाओं का निर्वाह करते हैं।

11.2 भूमिका (Introduction)

भारत में विकास के लिये यह आवश्यक है कि ग्रामीण क्षेत्रों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाये। हालांकि नगरीय विकास भी आवश्यक होता है किन्तु ग्रामीण विकास की अपनी विशिष्ट समस्यायें एवं बाधायें होती हैं। अशिक्षा, संरचनात्मक सुविधाओं का आभाव, एवं जागरूकता की कमी आदि के कारण ग्रामीण क्षेत्रों का विकास करना नगरीय क्षेत्रों की तुलना में कहीं अधिक चुनौतीपूर्ण होता है। ऐसे परिदृश्य में समाज कार्य का ज्ञान सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिये समुदायों की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक समस्याओं को समझने में सहायक होता है जिससे वे कार्यक्रमों का बेहतर ढंग से संचालन करने एवं उनका लाभ पहुंचाने में मददगार होते हैं।

11.3 ग्रामीण एवं नगरीय विकास (Rural and Urban Development)

ग्रामीण विकास

भारत गांवों में बसता है, यहां की 3/4 से अधिक जनता गांवों में ही रहती है। गांवों के जीवन की अपनी कुछ विशेषताएं है। ये विशेषतायें आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा नैतिक सभी क्षेत्रों में विद्यामान है| जनसंख्या के इतने बडे भाग की सामाजिक -आर्थिक समस्याओं का प्रभावपूर्ण समाधान किए बिना ही कल्याणकारी राज्य के लक्ष्य को किसी प्रकार भी पूरा नहीं कर सकते है |यही वजह है कि भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद से ही एक ऐसी वृहद योजना की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी| जिसके द्वारा ग्रामीण समुदाय में व्याप्त अशिक्षा, निर्धनता, बेरोजगारी, कृषि के पिछडेपन तथा रूढिवादिता जैसी समस्याओं का समाधान किया जा सके।

भारत में ग्रामीण विकास के लिए यह आवश्यक था कि कृषि की दशाओं एवं दिशाओं में सुधार किया जाए। सामाजिक तथा आर्थिक संरचना को बदला जाएं, आवास की दशाओं में सुधार किया जाए, किसानों को कृषि योग्य भूमि प्रदान की जाए, जन स्वास्थ्य एवं शिक्षा के स्तर बेहतर किया जाये एवं दुर्बल वर्गों को विशेष संरक्षण प्रदान किया जाए।

उपर्युक्त लक्ष्यों की प्राप्ति तथा त्वरित विकास के लिए ग्रामीण क्षेत्रों के निचले स्तर के लोगों को विकास योजनाओं से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जोड़ने पर बल दिया गया। इसके मद्देनज़र 31 मार्च, 1952 में सामुदायिकविकास से सम्बंधित कार्यक्रमों को चलाने की लिए योजना आयोग के तहत सामुदायिक परियोजना प्रशासन संगठन की स्थापना की गयी। ग्रामीण विकास की इस योजना का नाम सामुदायिक विकास योजना रखा गया तथा 2 अक्टूबर 1952 को 55 विकास खण्डों की स्थापना करके इस योजना का शुभारम्भ किया गया। कृषि को इस व्यापक कार्यक्रम का आधार बनाया गया। भूमि सुधार, साख व्यवस्था, ज्ञान एवं विज्ञान के लाभों और उपलब्धि को किसानों के दरवाजे तक पहुचाने की योजना बनी। इस दिशा में सहकारिता आन्दोलनों ने भी सहायक भूमिका निभाई।

ग्रामीण विकास का अर्थ

शाब्दिक रूप से ग्रामीण विकास का अर्थ समुदाय का विकास या प्रगति है। सामान्यतः ग्राम्य विकास को सामुदायिक विकास का पर्याय समझा जाता रहा है। योजना आयोग के प्रतिवेदन में सामुदायिक विकास के अर्थ को स्पष्ट हुए यह कहा गया है कि सामुदायिक विकास एक ऐसी योजना है जिसके द्वारा नवीन साधनों की खोज करक ग्रामीण समाज के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में परिवर्तन लाया जा सकता है।

इसके उद्देश्य में भारत सरकार ने इस योजना के आठ उद्देश्यों को स्पष्ट किया है।

1. गांव में उत्तरदायी तथा कुशल नेतृत्व का विकास।
2. ग्रामीण जनता के मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन।
3. आत्मनिर्भर एवं प्रगतिशीलता।
4. ग्रामीण शिक्षकों के हितों को सुरक्षित रखना।
5. ग्रामीण समुदाय के स्वास्थ्य की रक्षा करना।
6. कृषि का आधुनिकीकरण एवं ग्रामीण उद्योगों का विकास।
7. ग्रामीण स्त्रियों एवं परिवारों की दशा में सुधार।
8. राष्ट्र के भावी नागरिकों के रूप में युवाओं के समुचित व्यक्तित्व का विकास।

इन सभी उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए यदि व्यापक दृष्टिकोण अपनाया जाए तो कहा जा सकता है कि ग्रामीण विकास कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण समुदाय की सोई हुई क्रान्तिकारी शक्ति को जागृत करना है। परिणामस्वरूप समुदाय वैचारिक एवं क्रियान्वयन के स्तर पर विकासशील हो और अपनी सहायता स्वयं कर सके।

ऐसी मान्यताएं हैं कि ग्रामीण विकास योजनाएं स्थानीय आवश्यकताओं पर आधारित होनी चाहिए। उद्देश्य प्राप्ति हेतु जनसहभागिता केवल प्रेरणा का परिणाम हो। ऐसी योजनाएं पूर्णतया नौकरशाही व्यवस्था द्वारा संचालित न हो इसकी बागडोर ग्रामीण समुदायों को ही दिया जाना चाहिए।

ग्रामीण विकास का संगठन

आरम्भ में यह भारत सरकार के योजना मंत्रालय से सम्बद्ध था परन्तु कालान्तर में इसका समावेश कृषि तथा ग्रामीण विकास मंत्रालय में हो गया वस्तुस्थिति यह है कि सामुदायिक विकास योजना का संगठन तथा संचालन केन्द्र स्तर से लेकर ग्राम स्तर तक विकसित है। मुख्यतः इसे पांच भागों में बांटा जा सकता है।

1. केन्द्र स्तर पर

इस योजना की प्रगति तथा नीति निर्धारण के लिए एक विशेष सलाहकार समिति का गठन किया गया है जिसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री हैं। कृषि मंत्री एवं योजना आयोग के सदस्य इस समिति के भी सदस्य होते हैं इसी स्तर पर एक परामर्शदात्री समिति भी होती है जिसके सदस्य लोकसभा के कुछ मनोनित सदस्य होते हैं। यह सलाहकार समिति योजना की नीति एवं प्रगति के विषय में परामर्श करती रहती है।

2. राज्य स्तर पर

इस विकास कार्यक्रम को संचालित करने का वास्तविक दायित्व राज्य सरकारों का है यहां एक विकास समिति होती है जिसकी अध्यक्षता उस राज्य का मुख्यमंत्री करता है और समस्त विकास विभागों के मंत्री इसके सदस्य होते हैं। विकास आयुक्त इस समिति का सचिव होता है। विकास आयुक्त को परामर्श देने के लिए राज्य विधायिका के कुछ मनोनित सदस्यों की एक समिति होती है।

3. जिला स्तर पर

इस योजना का दायित्व जिला परिषद का है जिला परिषद में जनता के चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं जिसमें पंचायत समितियों के सभी अध्यक्ष तथा लोकसभा एवं विधानसभा के सदस्य सम्मिलित हैं। इस योजना को संचालित करने का कार्य जिला नियोजन समिति का है जिसका अध्यक्ष जिलाधीश होता है।

4. खण्ड स्तर पर

विकास खण्ड के प्रशासन के लिए प्रत्येक खण्ड में एक खण्ड विकास अधिकारी नियुक्त किया जाता है तथा इनकी सहायता के लिए अन्य अधिकारी होते हैं। खण्ड स्तर पर नीतियों के निर्धारण तथा योजना के संचालन का दायित्व क्षेत्र पंचायत का होता है। सरपंच ग्राम्य पंचायतों के अध्यक्ष स्त्रियों, अनुसूचित जाति तथा जनजाति का प्रतिनिधित्व करने वाले कुछ व्यक्ति इस स्तर की क्रियान्वयन समिति के सदस्य होते हैं।

5. ग्राम स्तर पर

इस स्तर पर योजना के क्रियान्वयन का दायित्व ग्राम पंचायत का होता है लेकिन इस स्तर पर महत्वपूर्ण भूमिका ग्राम सेवकों की होती है। साधारणतया 10 ग्रामों के लिए एक ग्राम सेवक को नियुक्त किया जाता है।

ग्रामीण विकास के कार्यक्रम

सामुदायिक विकास के कार्यक्रम अत्यंत व्यापक है। जिनमें समाज के सभी अंग सम्मिलित होते हैं। कृषि से लेकर समाज सेवा का कार्यक्रम सामुदायिक विकास का ही हिस्सा है। इन सभी कार्यक्रमों में कृषि सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्यक्रम रहा है।

1. कृषि

इसके लिए कृषि विकास, ऊसर भूमि का कृषि के उपयोग में लाना, उन्नत बीज, पशुपालन विकास एवं सहान खेती कार्यक्रम पर जोर दिया जाता है।

2. सिंचाई

कृषि के अधिक उत्पादन के लिए लघु सिंचाई साधन जैसे तालाब, नहर, नलकूप इत्यादि कार्यो पर जोर दिया जाता है।

3. शिक्षा

प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा का व्यापक कार्यक्रम सामाजिक शिक्षा, प्रौढ शिक्षा इसके महत्वपूर्ण अंग होने चाहिए। बेसिक शिक्षा पद्धति को प्रोत्साहन देना एवं ग्रामीणों में जागरूकता लाने की व्यवस्था आवश्यक है।

4. स्वास्थ्य

ग्रामीण जनता के स्वास्थ का स्तर बहुत निम्न है। इनमें विभिन्न प्रकार की बीमारियों का प्रकोप भी देखने को मिलता है। अतः ग्रामीण जनता की व्यापक स्वास्थ्य समस्याओं को दूर करना भी इसके उद्देश्यों में प्रमुख था। खण्ड स्तर पर चिकित्सा केन्द्र की स्थापना, पेयजल की सुचारू व्यवस्था, संक्रामक रोगों जैसे चेचक, मलेरिया, हैजा के इलाज व रोकथाम की व्यवस्था करना।

5. संचार

ग्रामीण क्षेत्रों में आवागमन के साधनों को विकसित करना एवं ऐसी सडकों का निर्माण करना कि कोई भी ग्राम मुख्य सडक से दूरी पर न रहे।

6. रोजगार

ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी एवं कम रोजगारी की समस्याओं को ऐसे उद्योग-धंधों के विकास द्वारा दूर करना जिनसे स्थानीय जनता को साल मे अधिक से अधिक समय काम में लगाया जा सके।

7. आवास

इसके अन्तर्गत उन्नत आवास की व्यवस्था, नई आवासीय बस्तियों का विकास आदि कार्यक्रमों में सम्मिलित हैं।

8. समाज कल्याण

सामुदायिक विकास के अन्तर्गत समाज कल्याण कार्यक्रम की वे सेवाऐं शामिल की गई हैं जो मनोरंजन सामुदायिक मनोविनोद एवं सामुदायिक मेलों आदि से सम्बंधित है।

9. प्रशिक्षण

इस आन्दोलन को देहात में ले जाना एवं उसको ग्रामीण जनता द्वारा अपनाना एक कठिन एवं विशिष्ट कार्य है। इससे सम्बंधित कार्यकर्ताओं को सम्बंधित ज्ञान एवं प्रशिक्षण प्रदान करना जरूरी है।

ग्रामीण विकास के उद्देश्य

डा. डगलस ने ग्रामीण विकास के सामान्य तथा विशिष्ट उद्देश्य बताये हैं:

ये उद्देश्य इस प्रकार हैं:

1. ग्रामवासियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना।
2. उत्तरदायी तथा प्रत्युत्तर पूर्ण ग्रामीण नेतृत्व संगठन तथा संस्थाओं का विकास करना।
3. ग्रामवासियों को इस प्रकार विकसित करना कि वे स्वावलम्बी तथा उत्तरदायी नागरिक बन सके तथा एक नवीन भारत के निर्माण में प्रभावी ढंग से ज्ञान तथा सूझबूझ का योगदान दे सकें।

भारत में सामुदायिक विकास कार्यक्रम: एक सिंहावलोकन

1952 में प्रारम्भ किया गया सामुदायिक विकास कार्यक्रम भारतवर्ष में ग्राम्य विकास के विभिन्न दृष्टिकोणों तथा किए गए प्रयोगों पर आधारित था। ग्राम्य विकास का सम्भवतः प्रथम प्रयोग 1920 में रविन्द्रनाथ

टैगोर द्वारा श्री निकेतन परियोजना के रूप में किया गया। इसके अतिरिक्त 1920 के अन्त में एफ.एल.ब्रेन द्वारा संचालित गुडगांव परियोजना, 1921 में यंग मैन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन द्वारा कन्याकुमारी जिले में चलाई गई मार्टैन्डम परियोजना, 1932 में बी.टी. कृष्णाचारी द्वारा डा. स्पेंसर हैच के सहयोग से चलाई गई बडोदा परियोजना, 1936 में महात्मा गांधी द्वारा वर्धा में क्रियान्वित की गई सेवाग्राम परियोजना, 1948 में एस.के.डी. द्वारा चलाई गई नीलोखेडी परियोजना तथा इसी वर्ष उत्तर प्रदेश में श्री एलबर्ट मेयर द्वारा इटावा परियोजना का उल्लेख किया जा सकता है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम मुख्य रूप से इटावा परियोजना पर आधारित था यह परियोजना सामुदायिक विकास कार्यक्रम की अग्रगामी परियोजना कहलाती है जिसके प्रमुख लक्ष्य इस प्रकार रखे गए:

1. उत्पादन, सामाजिक महत्व, पहल, लोगों के आत्म विश्वास तथा सहयोग इत्यादि की दृष्टि से कृषि के विकास के स्तर को आंकना।
2. इस बात का पता लगाना कि कितन जल्दी परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।
3. यह ज्ञात करना कि क्या इस कार्यक्रम विशेष के बन्द किए जाने के बाद भी इसके परिणाम लोगों में स्थायी रह सकते हैं।
4. यह निर्धारित करना कि परियोजना के परिणाम देश के अन्य भागों में कहां तक दोहराये जा सकते हैं।

ग्राम्य विकास कार्यक्रम के आधार

इसके दो प्रमुख आधार रखे गए:

1. ग्रामीण समुदाय के सम्पूर्ण विकास के लिए आवश्यक तकनीकी तथा अन्य सेवाओं के सहयोग के साथ-साथ व्यक्तियों की सहभागिता को सुनिश्चित किया जाए, तथा

2. गांवों के विकास की समस्या को सुलझाने के लिए सम्पूर्णता के अभिगम को अपनाते हुए कार्य किया जाना चाहिए जिसमें समस्या के समस्त आयामों पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के प्रमुख घटक

1952 में चालाए गए सामुदायिक विकास कार्यक्रम के प्रमुख घटक निम्नलिखित थे

१. कृषि तथा इससे सम्बन्धित विषय

1. उपलब्ध किन्तु प्रयोग न की जा रही बंजर भूमि का सुधार।
2. ग्राम विद्युतीकरण का विकास।
3. रासायनिक खादों की व्यवस्था।
4. उत्तम किस्म के बीजों की व्यवस्था।
5. उन्नत कृषि तकनीकों का विकास तथा भूमि का पूर्ण सदुपयोग।
6. पशु चिकित्सा की व्यवस्था।
7. कृषि संबंधी तकनीकी सूचना, सामग्री तथ बुलेटनों की व्यवस्था।

8. वृक्ष लगाने के साथ-साथ पेडों के रख-रखाव की व्यवस्था करना।

२. सिंचाई

इसके अन्तर्गत नहरों, नलकूपों, कुओं, तालाबों इत्यादि के माध्यम से खेती के लिए पानी की व्यवस्था करना।

३. परिवहन

1. सडकों की व्यव्स्था।
2. आवागमन के साधनों में वृद्धि।
3. पशुओ को इधर उधर ले जाने की सुविधाओं का विकास सम्मिलित थे।

४. स्वास्थ्य

1. सफाई तथा जन स्वास्थ्य उपायों की व्यवस्था।
2. मलेरिया तथा अन्य बीमारियों पर नियंत्रण।
3. पीने के पानी की व्यवस्था।
4. बीमारी के लिए चिकित्सा सहायता।
5. गर्भवती माताओं की देखभाल तथा प्रसूति संबंधी सेवाओं।
6. सामान्यीकृत लोक स्वास्थ्य सेवा तथा शिक्षा को रखा गया।

५. पूरक रोजगार

इसके प्रमुख घटक इस प्रकार थे:

1. मुख्य अथवा गौण व्यवसाय के रूप में कुटीर उद्योगों तथा शिल्पों को बढावा देना।
2. स्थानीय आवश्यकताओं के लिए अथवा परियोजना से बाहर के क्षेत्रों के व्यक्तियों को रोजगार में लगाने के लिए मध्यम तथा लघु उद्योगों को बढावा देना।
3. व्यापार तथा कल्याण सेवाओं के माध्यम से रोजगार को बढावा देना।
4. स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भवन निर्माण सामग्री प्रदान करने के लिए ईटों तथा आरा मशीनों की व्यवस्था करना।

उपरिलिखित कार्यक्रम विभिन्न प्रकार के लक्ष्यों तथा स्थितियों में सुधार लाने के लिए चलाए गए। मुख्य रूप से ये कार्यक्रम गरीब व्यक्तियों के रहन सहन के स्तर को बढाने के लिए चलाए गए। इस समय ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबों की स्थिति सुधारने के लिए चलाए जा रहे प्रमुख कार्यक्रम इस प्रकार है:

ग्राम विकास (पंचायती राज) 73वाँ संशोधन अधिनियम,1992

संविधान (73वाँ संशोधन) अधिनियम,1992 के पारित होने से संघीय लोकतांत्रिक ढाँचे में एक नये युग का सूत्रपात हुआ है और पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ है। इस अधिनियम के लागू होने के परिणामस्वरूप जम्मू और कश्मीर, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली और उत्तरांचल को छोडकर लगभग सभी

राज्यो/संघ राज्य क्षेत्रो ने अपने कानून बना लिये हैं। इसके अलावा सभी राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों ने चुनाव करवा लिये हैं। परिणामस्वरूप, देश में ग्राम स्तर पर 2,32,278 पंचायतों, मध्य स्तर पर 5,906 पंचायतों और जिला स्तर पर 499 पंचायतो के चुनाव करवा लिए गये हैं। ये पंचायतें सभी स्तर के लगभग 29.2 लाख चुनें हुये प्रतिनिधियो द्वारा संचालित की जा रही है इस प्रकार यह एक अत्यधिक व्यापक प्रतिनिधि आधार है जो विश्व के किसी भी विकसित अथवा अल्प विकसित देश में विद्यमान नही है।

ग्रामीण विकास कार्यक्रम

रोजगार योजना वर्ष 1989 में शुरू किये गये प्रमुख मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों में से एक था जिसे राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम नामक दो मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों का विलय करके बनाया गया था। यह पंचायती राज संस्थाओं के जरिये देश में सभी गाँवो में कार्यान्वित एक सबसे बडा मजदूरी रोजगार कार्यक्रम था। इसने टिकाऊ स्वरूप की ढाँचागत सुविधाओं के सृजन में काफी हद तक योगदान भी दिया है जिसका ग्राम अर्थव्यवस्था के विकास में काफी महत्व है, इससे ग्रामीण गरीबों के जीवन के स्तर में सुधार हुआ। जवाहर रोजगार योजना तथा सुनिश्चित रोजगार योजना दोनो के परिणामस्वरूप स्कूल भवनो, सडको तथा अन्य ढाँचागत सुविधाओ के रूप में टिकाऊ स्वरूप की परिसम्पत्तियों का सृजन हुआ। तथापि इन कार्यक्रमों के अन्रतगत मजदूरी रोजगार के सृजन को काफी प्राथमिकता दी गई थी तथा यह प्रयास था कि रोजगार सृजन की प्रक्रिया में टिकाऊ स्वरूप की परिसम्पत्तियां भी सृजित हों।

ग्रामीण विकास से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है। जैसे- जवाहर ग्राम समृद्धि योजना, समग्र आवास योजना, स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, सुनिश्चित रोजगार योजना, जवाहर ग्राम समृद्धि योजना, अन्नपूर्णा योजना, एस.जी.एस.वाई, जे.जी.एस.वाई., आई.ए.वाई, एन.एस.ए.पी. आदि।

नगरीय विकास या कल्याण

नगरीकरण की तीव्र प्रक्रिया ने हमारी सामाजिक- आर्थिक संरचना एवं सामाजिक व्यवस्था को इस सीमा तक प्रभावित किया है कि हमारे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आयाम ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक, धार्मिक एवं नैतिक मूल्य भी परिवर्तित हो गए हैं। नगरीकरण की प्रक्रिया ने जहां एक ओर परम्परागत संकीर्ण मूल्यों, व्यवहारों व मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाकर जीवन को आधुनिक सुख-सुविधा युक्त व आरामपूर्ण बनाया है वहीं दूसरी ओर समस्याओं की लम्बी कतार खडी कर दी है। भूमि तथा आवास की कमी, जनसुविधाओं, पीने के पानी, स्वच्छता व सफाई सेवाएं, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, स्थानीय परिवहन आदि पर भारी दबाव, गंदी व मलिन बस्तियों में बढोत्तरी, मनोरंजक स्थलों का अभाव, व्यक्तित्व व पारिवारिक विघटन, गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी मानसिक तनाव व चिन्ता, प्रदूषण आदि न जाने कितनी ही ऐसी समस्याओं को इसने जन्म दिया है जिससे आज का नगरीय समुदाय जूझ रहा है। यदि बडे पैमाने पर देखा जाए तो संकट, भ्रष्टाचार, जमाखोरी, संघर्ष एवं प्रतिस्पर्धा, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का विकास, राष्ट्रीय धन का असमान वितरण, औद्योगिक झगडे, हिंसा, गतिशीलता में वृद्धि, धर्म की महत्वहीनता, सामुदायिक विघटन आदि समस्याओं से निपटने के लिए ज्ञान की विभिन्न शाखाएं व संस्थाएं अपनी-अपनी सीमाओं में अपने तरीकों से प्रयास कर रही हैं। नगरीय कल्याण का उद्देश्य प्रत्येक नगरवासी की आर्थिक जरूरतों की पूर्ति, उत्तम स्वास्थ्य, संतोषप्रद जीवन-निर्वाह स्तर के अतिरिक्त सभी नागरिकों के मध्य सामाजिक सामंजस्य, उचित पर्यावरण, उपयुक्त जनसुविधाओं तथा मनोरंजनयुक्त जीवन के अवसर प्रदान करना है।

नगर एक ऐसा जनसमुदाय है जिसकी अपनी कुछ सामाजिक विशेषताएं होती हैं। जैसे घनी आबादी, व्यापार, उद्योग, द्वितीयक संबंध एवं नियंत्रण वैयक्तिक सम्बन्ध आदि। नगरीकरण की प्रक्रिया अत्यन्त प्राचीन है और यह

एक ऐसी क्रमिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा ग्रामीण समुदाय के जीवन में नगरीय विशेषताओं का विकास होता है। नगरीकरण से तात्पर्य केवल नगरीय वृद्धि या नगरीय विकास से लगा लिया जाता है जबकि वास्तव में इनके अर्थ भिन्न-भिन्न है।

नगरीय क्षेत्रों में रहने वाली जनसंख्या, देश की कुल जनसंख्या का कुछ प्रतिशत या भाग है। जिसका अर्थ है कि नगरीय जनसंख्या में वृद्धि तो ग्रामीण जनसंख्या में समानुपातिक कमी है। नगरीकरण, औद्योगीकरण का परिणाम व कारण दोनों ही है। इस रूप में भी ग्रामीण कृषि क्षेत्रों में से औद्योगिक क्षेत्रों में जाकर बस जाने के परिणामस्वरूप नगरों की जनसंख्या या देश में नगरों की संख्या या नगरों के विस्तार का अर्थ नगरीकरण है |

नगरीकरण के कारक

नगरीकरण प्रक्रिया की तीव्र गति तथा नगरों की संख्या में वृद्धि के प्रमुख कारक निम्न हैं:

1. ग्रामीण से नगरीय क्षेत्रों की ओर प्रवसन।
2. नगरीय क्षेत्रों में जनसंख्या की प्राकृतिक वृद्धि।
3. पूर्व ग्रामीण बस्तियों का नगरों में वर्गीकरण।

ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों की ओर प्रवसन

इसके निम्नलिखित कारण है:

- दाब एवं आकर्षक तत्व।
- कृषिगत समृद्धि के कारण प्रवास।
- कस्बों से नगरों की ओर पलायन।
- औद्योगीकरण।
- यातायात साधनों का विस्तार।
- जनसंख्या में प्राकृतिक वृद्धि।
- नगरीय क्षेत्रों का पुनः वर्गीकरण।
- जनसंख्या विस्फोट।

नगरीकरण के समक्ष चुनौतियां

नगरीकरण अनेक समस्याओं तथा गंदी बस्तियों, अस्वच्छता, पर्यावरणीय प्रदूषण, आवास, जल, विद्युत, यातायात एवं चिकित्सकीय सहायता के अभाव को जन्म देता है। भारत में नगरीकरण से उत्पन्न समस्याआं े एवं चुनौतियों का वर्णन निम्नलिखित है-

1. आवास का आभाव

जनसंख्या की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति में आवास व्यवस्था का महत्व भोजन एवं वस्त्र के तुरंत बाद है। आवास योजना के अनेक मौलिक उद्देश्यों में आवास की व्यवस्था करना, जीवन की गुणवत्ता को उन्नत करना, विशेष तौर पर जनसंख्या के निर्धन समूहों के स्वास्थ्य, स्वच्छता एवं शिक्षा के संदर्भ में महत्वपूर्ण उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सुचारू दवाएं उत्पन्न करने, पर्याप्त अतिरिक्त रोजगार एवं विविध आर्थिक क्रियाएं उत्पन्न करने एवं उनकी पूर्ति में सहायता देना है। दुर्भाग्य का विषय है कि एक ओर तो शहरों में मकानों की कमी से है वही दूसरी ओर मकान की जर्जर अवस्था, सघनता, बनावट, संरचना और बनावट का स्तर और भी प्रश्न चिन्ह लगाते हैं। भीड-भाड तथा घुटनयुक्त मकान, मकानों के उच्च मूल्य, तीव्रता से झुग्गी-झोपडी एवं बस्तियों का निर्माण तथा सम्पूर्ण सजीव पर्यावरण की गुणवत्ता में तीव्रपतन, द्रुत जनसंख्या में वृद्धि, अपर्याप्त निवेश, व्यापक निर्धनता, नगरों में आवास संबंधी समस्याओं के कुछ प्रमुख कारण हैं।

आवास की गुणवत्ता एवं मात्रात्मक दोनों दृष्टि से पूर्ति बढाने अर्थात लाखों को शरण देने एवं आवश्यकता आधारित उपयुक्त मकानों की व्यवस्था करने में सफलता की कुंजी आवश्यक आवासीय निवेशों को सुनिश्चित करने में हैं।

2. मलिन बस्तियां

गन्दी व मलिन बस्तियां विश्व के लगभग अधिकांश शहरों में किसी न किसी रूप में पायी जाती है। गन्दी बस्तियां जहां अनियोजित या आंशिक नियोजित विकास को दर्शाती हैं वहीं यह किसी देश में वहां के जीवन स्तर में गिरावट की ओर इंगित करती है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने इन गन्दी बस्तियों को अस्थाई अनियोजित मकानों का एक समूह या कोई क्षेत्र या कोई ऐसा भाग माना है| जहां काफी लोगों की भीड रहती हो और जन स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव वहां के निवासियों के स्वास्थ्य, सुरक्षा तथा नैतिकता को खतरा उत्पन्न करता हो। इन बस्तियों में लोग घुटन भरी भीड, तंग तथा बेतरतीब ढंग से बनाई गई झोपडियों में रहते हैं और स्वास्थ्य, सफाई, शौचालय पीने का पानी आदि सुविधाओं के अभाव में अतिरिक्त निवासियों का जीवन स्तर इतना निम्न होता है कि वे स्वयं वैयक्तिक विकास व सामुदायिक जीवन में भाग लेने में स्वयं में असमर्थ पाते हैं।इन बस्तियों के विकास का मुख्य कारण आर्थिक है।

इन बस्तियों में श्रमिक और निम्न आय समूह वाले व्यक्ति निवास करते हैं। मकानों की अपर्याप्त संख्या भी इस समस्या को प्रोत्साहित करती है। स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन के साधन, खेलने के मैदान की बात तो दूर इन बस्तियों में पीने का पानी, हवा, प्रकाश, शौचालय, गन्दे पानी के निकास की .आदि आधारभूत आवश्यकताओं की भी व्यवस्था नहीं होती। आस-पास का वातावरण दुर्गन्धयुक्त और प्रदूषित होता है। फलस्वरूप तपेदिक, दमा, पेट की बीमारियां व सहायक रोग पेचिस जैसे गंभीर रोग पनपते हैं।वास्तव में गंदी बस्तियाँ अनैतिकता तथा अपराधों के केन्द्र भी होते हैं। नशा, जुआ, शराबखोरी, वेश्यावृत्ति, बाल-अपराध, भिक्षावृत्ति आदि सामाजिक बुराइयां भी इन बस्तियों में पलती हैं| व्यक्तिगत विघटन, पारिवारिक विघटन, सामाजिक विघटन, राष्ट्रीय विघटन, नैतिक पतन, अज्ञानता को प्रोत्साहन , खराब स्वास्थ्य तथा बीमारियां आदि गंदी बस्तियों की देन हैं। इन मलिन बस्तियों को कम करने तथा लोगों की जिन्दगी तथा रहन-सहन में सुधार लाने की आवश्यकता है। अतः इसके लिए निम्न बातों पर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है-जनसंख्या पर रोक, रोजगार सुविधाओं में वृद्धि, सामाजिक सुरक्षाओं का विस्तार, कृषि की उन्नति, पर्याप्त मजदूरी, सहकारी समितियों की स्थापना, गन्दी बस्तियों की सफाई, श्रमिक

बस्तियों का निर्माण तथा नगर नियोजन आदि। इस प्रकार इन सब बातों पर ध्यान देते हुए नगरों को वैज्ञानिक सुविधाओं के अनुरूप नियोजित करके गंदी बस्तियों को समाप्त किया जा सकता है।

3. नगरीय सुविधाओं का भार

किसी भी शहर या कस्बे में पीने के पानी, शौचालय, गन्दे पानी के बहाव की व्यवस्था, बिजली, प्रकाश, खेलने के पार्क, कूडा करकट के निस्तारण आदि की उचित व्यवस्था वांछनीय होती है। जनोपयोगी, जनसुविधाओं को प्रदान किया जाना तथा प्रबन्ध नगरीय प्रशासनिक संस्थानों के माध्यम से होता है। स्वच्छता, सफाई सेवाओं, पर्यावरणीय परिस्थितियों तथा आधारभूत सेवाओं की स्थिति देश में संतोषजनक नही है। जन सुविधाओं की समस्यांएँ मकानो की पुरानी संरचना तथा इनका निम्न स्तर होने के कारण और गम्भीर होती जा रही है। इसके अतिरिक्त मुहल्ले और कालोनियों में सडकें नालियाँ तथा गलियों में प्रकाश की समस्या है। सार्वजनिक शौचालय, स्नानागार, खेलकूद के लिए पार्क, आवागमन के लिए खुली सडके तथा रास्ते, सार्वजनिक यातायात व्यवस्था तथा उच्च सार्वजनिक सुविधाओं का अभाव महानगरों से लेकर छोटी श्रेणी के शहरों में सामान्य बात है।

4. यातायात की अव्यवस्थित वृद्धि

सभी प्रमुख नगरों मे यातायात की भीड़ पायी जाती है। इसके उत्तरदायी कारण स्पष्ट तथा छोटे स्थान पर अत्यधिक लोगो एवं गति विधियों का सकेन्द्रीकरण एवं कार्य स्थानों पर निवास स्थानो के मध्य अदक्ष संबंध हैं पिछले दो दशकों में स्थिति और भी बिगडी है। समेकित नीति एवं समन्वित उपागम की अनुपस्थिति के कारण अन्तर नगर यातायात में अव्यवस्थित ढंग से वृद्धि हुयी है जिसमें दीर्घकालीन किसी भावी योजना पर विचार नही किया गया है एवं फलस्वरूप नगरों में भीड एवं गम्भीर संकट उत्पन्न हो गए हैं। नगरीय यातायात प्रणाली को अनुकूलतम प्रकार से तभी विकसित किया जा सकता है जब यातायात एवं भूमि प्रयोग नियोजन का इकटठा परीक्षण किया जाए।

5. नगरीय भूमि की दुर्लभता

भारत में नगरीकरण की अत्यधिक भयानक विशेषतया भूमि की अति दुर्लभता है जो मंहगी होने के कारण साधारण व्यक्ति के सामर्थ्य के बाहर है। भूमि की अल्पता के कारण विक्रेता एवं क्रेता दोनो कानून का उल्लंघन करते हैं।

6. प्रदूषण पर रोक

नगरीकरण की गम्भीर चुनौती जल, वायु, ध्वनि एवं ठोस जल के प्रदूषण से है। पर्यावरण संरक्षण कानून 1986 के अनुसार प्रदूषण किसी ठोस, तरल एवं रसायनिक पदार्थ का इतनी मात्रा में पाया जाना है जो पर्यावरण के लिए हानिकारक हो सकता है। विश्व स्वास्थ्य संध के अनुमानो के अनुसार संसार में सर्वाधिक रोगों का कारण जल प्रदूषण है। उद्योगों, वाहनो द्धारा उत्पन्न प्रदूषित वायु में दीर्घकाल तक श्वास लेने से विविध रोग तथा फेफडों का कैंसर, न्यूमोनिया, अस्थमा ब्रोकइटिस तथा समान्य जुकाम हो सकते हैं। ध्वनि प्रदूषण से रक्त वाहिनियाँ सिकुड जाती है जससे उच्च रक्त चाप हो जाता है एवं जो मस्तिष्क को भी प्रभावित कर सकता है। प्रदूषण से पशुओ, पक्षियों एवं जल में रहने वाले जानवरों फसलों एवं सब्जियों को भी गंभीर हानि होती है। ठोस कचरा एवं कूडा करकट से अनेक प्रकार के जीवाणुओं को जन्म देते एवं पोषित करते हैं। घुमक्कड कुत्तों को आकर्षित करते हैं एवं भूमिगत जल तथा भूतल को प्रदूषित करते है। पिछले दो दशकों में औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप अधिक

से अधिक कचरा उत्पन्न हो रहा है जो कृषि के लिए प्रयोग किये जाने वाले भूमिगत जल एवं मिटटी को प्रदूषित करता है।

7. रोजगार अवसरों का अभाव

नगरीय क्षेत्रों को प्रवासी व्यक्ति वहाँ पर रोजगार पाने की आशा से जाते हैं परन्तु जब उन्हे अपनी योग्यताओं एवं कौशल के अनुरूप रोजगार नही मिलता तो उन्हें निराशा होती है। यद्यपि निम्नवर्गीय एवं अशिक्षित प्रवासियों के नगरों में भवन निर्माण कार्यो एवं कारखानों में श्रमिक के रूप में रोजगार मिल जाता है परन्तु अर्द्धशिक्षित व्यक्तियों को जिन्हें रोजगार प्राप्त नही होता| रोजगार के उचित अवसरों का अभाव तनाव , अवसाद , अपराध , विघटन तथा आत्महत्या जैसी घटनाओं को बढ़ावा देती है ।

नगरीय विकास

यह राज्य सरकारों के अधिकार क्षेत्र का विषय है। केन्द्र सरकार का नगरीय कार्यक्रम एवं सेवायोजन मंत्रालय नगरीय विकास के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में राज्य सरकारों की सहायता करता है। इसके लिए यह मंत्रालय शहरी विकास संबंधित स्थूल नीति का निर्धारण करता है शहरी विकास से संबंधित संविधान संशोधनों संबंधी विधानों अन्य विधानों तथा नीति निर्देशकों का निर्माण करके राज्य को विधायी सहयोग उपलब्ध कराता है शहरी विकास से सम्बंधित केन्द्र विभिन्न संस्थानों द्वारा उपलब्ध करायी गई सहायता का अनुश्रवण करता है तथा योजनाबद्ध शहरीकरण के लिए राज्य सरकारों को तकनीकी सहायता तथा परामर्श उपलब्ध कराता है।

शहरी विकास से संबंधित किए गए प्रयास

(अ) राष्ट्रीय शहरी नीति निर्माण।

(ब) शहरी संदर्भ के संबंध में राष्ट्रीय कार्यबल का गठन।

(स) संविधान का चैहत्तरवां संशोधन (नगर पालिका अधिनियम) अधिनियम, 1992।

(य) शहरी भूमि (अधिकतम सीमा निर्धारण एवं नियमन अधिनियम), 1976।

(र) नगरीय विकास से संबंधित विभिन्न योजनाएं।

(अ) छोटे तथा मंझोले शहरों के एकी कृत विकास की योजना।

(ब) महानगरों के लिए अधिसंरचनात्मक विकास के लिए केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना।

(स) नगरीय मानचित्र योजना।

(द) बाहरी सहायता प्राप्त शहरी विकास योजनाएं।

(य) नगरीय नियोजन तथा प्ररचना में उच्च्च कोटि के कार्य हेतु प्रधानमंत्री पुरस्कार योजना।

(ब) बीस सूत्री कार्यक्रम तथा मलिन बस्ती सुधार।

नगरीकरण प्रक्रिया को रोकने हेतु उपचारिक उपायों के बावजूद भी यह निरंतर बढता जा रहा है। नगरीकरण की प्रक्रिया को मोड़ने तथा नगरीय समस्याओं के समाधान में असफलता के निम्नलिखित कारण हैं:

1. जनसंख्या विस्फोट।

2. राष्ट्रीय नगरीकरण नीति की अनुपस्थिति।

3. राजनीतिक इच्छा का अभाव।

4. समूह का दबाव।

5. नगर नियोजन प्राधिकरणों के पास सांविधिक समर्थन का अभाव।

6. राष्ट्रीय नियोजन प्रक्रिया में नगरीय विकास को निम्न प्राथमिकता।

7. केन्द्रीय सरकार की सीमित भूमिका।

8. राज्यों के पास वित्त का अभाव।

9. नगरीय निकायों का पुरातन संगठन।

10. राजनीति की भूमिका।

नगरीय विकास प्राधिकरण

नगरीय आयोजन एवं विकास तथा नगरीय सुविधाओं एवं जल आपूर्ति, मल निकास, प्रदूषण नियंत्रण नगरीय स्थानीय सरकारों के मौलिक कार्य हैं। परन्तु हमारे नगर पालिका निकाय इन कार्यों को निष्पादित करने में असमर्थ कहे जाते हैं अतएव राज्य सरकारें इन कार्यों के निष्पादन हेतु कुछ विशेष उद्देशीय संगठनों तथा सुधार न्यास, आवास बोर्डों, जल प्रदाय एवं मल निकास बोर्डों एवं पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों की स्थापना करता हैं। नगरीय संस्थाएं क्योंकि इनमें सरकार द्वारा मनोनीत व्यक्तियों का प्रभुत्व होता है। प्रजातंत्र के वर्तमान युग के काल दोष युक्त है। यद्यपि इसमें पर्याप्त धनराशि का अंशदान करते हैं परन्तु उनके ऊपर इनका कोई नियंत्रण नहीं होता। इन कार्या में घोर भ्रष्टाचार है। जहां कहीं भी इन सुविधाओं जैसे मल निकास, जल व्यवस्था आदि कार्य किए जाते हैं |वहां इन सुविधाओं की दशा इतनी शोचनीय बन गयी है कि उनकी मरम्मत भी नहीं हो सकती एवं उनके स्थान पर नयी सुविधाओं की व्यवस्था करनी पडती है। इसकी समस्यों को खत्म करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने नगरीय विकास प्राधिकरणों को स्थापित किया।

11.4 सारांश (Summary)

सामान्यतया ग्राम विकास को सामुदायिक विकास का पर्यायवाची समझा जाता रहा है स्वतंत्रता के पश्चात नियोजकों का ध्यान ग्रामीण जनता के विकास पर विशेष रूप से गया। ग्रामीण जनता के जीवन आर्थिक तथा सामाजिक पुनर्निमाण के लिये व्यापक कार्यक्रम बनाया गया। इसके लिये कृषि एवं ग्रामीण विकास को आधार बनाया गया तथा इससे सम्बन्धित सहकारिता आन्दोलन का विकास किया गया। इसका उद्देश्य ग्रामवासियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना तथा उन्हें स्वावलम्बी बनाना था ग्रामीण क्षेत्र में नेतृत्व संगठन तथा संस्थाओं का विकास करना भी महत्वपूर्ण लक्ष्य था जिसकी प्राप्ति में सामाजिक कार्यकर्ताओं के द्वारा अपने ज्ञान एवं कुशलता का प्रयोग करके योगदान दिया जाता है। सामाजिक कार्यकर्ताओं ने ग्रामीण गरीबी उन्मूलन के क्षेत्र में भी बेहतर कार्य किया है। जबकि नगरीय क्षेत्र में भी उन्होंने गन्दी बस्तियों पर्यावरणीय प्रदूषण तथा चिकित्सीय सुविधाओं के आभाव के क्षेत्र में कार्य किया है।

11.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Question for Practice)

1. ग्रामीण विकास हेतु चलाए जा रहे विकास कार्यक्रमों की उपयोगिता बताइए।
2. नगरीय विकास से आप क्या समझते हैं?
3. नगरीय सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के उद्देश्य बताइये।

11.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

1. अहमद रफीउद्दीन मिर्जा, समाज कार्य दर्शन एवं प्रणालियां, शाइनिंग प्रेस लखनऊ, 2004
2. सिंह, सुरेन्द्र, पी.डी. मिश्र, समाज कार्य: इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियां, न्यू रायल बुक कम्पनी लखनऊ, 2010
3. मदन जी0आर., अमित अग्रवाल, परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन दिल्ली, 2012
4. सिंह मंजीत, व्यावसायिक समाज कार्य का आविर्भाव, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008
5. सिंह मंजीत, समाज कार्य के मूल तत्व, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008
6. भारत 2011, प्रकाशन विभाग नई दिल्ली।
7. Freidlander, W.A., Introduction to Social welfare.

इकाई-12

चिकित्सीय एवं मनःचिकित्सीय समाज कार्य

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य (Objectives)

12.1 प्रस्तावना (Preface)

12.2 भूमिका Introduction)

12.3 चिकित्सीय एवं मनःचिकित्सीय समाज कार्य (Medical and Psychiatric Social Work)

12.4 सारांश (Summery)

12.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Question for Practice)

12.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

12.0 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

1. चिकित्सकीय तथा मनःचिकित्सीय समाज कार्य से परिचित हो सकेंगे।
2. मनःचिकित्सीय समाज कार्य में सामाजिक कार्य कर्ता की भूमिका को समझ सकेंगे |
3. मनःचिकित्सीय समाज कार्य की कुशलताओं को ग्रहण कर उसको क्षेत्र कार्य में परिवर्तित कर कार्यानुभव कर सकेंगे |
4. स्वास्थ्य की मानसिक, शारीरिक एवं पारिवारिक स्तर पर आवश्यकता का वर्णन कर सकेंगे |
5. चिकित्सकीय समाज कार्य को क्षेत्र कार्य के सन्दर्भ में समझ सकेंगे |

12.1 प्रस्तावना (Preface)

समाज कार्य व्यक्ति के सकल सुख की प्राप्ति के लिये प्रयास करता है। इसकी यह मान्यता है कि व्यक्ति को सम्पूर्ण स्वास्थ्य का सुअवसर प्राप्त होना चाहिये। जिसके लिये आवश्यक है कि व्यक्ति के शरीर के साथ-साथ उसका मन भी स्वस्थ हो इसलिये मानव जीवन में स्वास्थ्य का महत्वपूर्ण स्थान है। समाज कार्य के एक क्षेत्र एवं विशेषीकरण के रूप में चिकित्सकीय एवं मनःचिकित्सीय समस्याओं से ग्रसित व्यक्तियों की सहायता की जाती है तथा यह प्रयास किया जाता है कि व्यक्तियों को समस्याओं का सामना न करना पड़े। अतः सामाजिक कार्यकर्ता व्यक्तियों के खराब शारीरिक स्वास्थ्य एवं बाध्यताओं के कारण होने वाले मनोसामाजिक समस्याओं का समाधान करने में सहायता देता है। सामाजिक कार्यकर्ता स्वास्थ्य निवारण एवं सामाजिक उपचार एवं पुनर्वास के लिये भी कार्य करते हैं। इस रूप में चिकित्सकीय एवं मनःचिकित्सीय कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

12.2 भूमिका (Introduction)

स्वास्थ्य के मानसिक, सामाजिक व शारीरिक तीन महत्वपूर्ण पक्षों के साथ यह सर्वमान्य हो चुका है कि रोगी के स्वास्थ्य सुधार में औषधि का जितना महत्व है उतना ही महत्व उसकी मानसिक व सामाजिक स्थितियों का भी है। इसी मान्यता के साथ चिकित्सा के क्षेत्र में समाज कार्य के अभ्यास की आवश्यकता को स्वीकार किया गया है फलस्वरूप समाज कार्य की एक नवीन शाखा के रूप में चिकित्सकीय समाज कार्य के माध्यम से समाज कार्य की पद्धति दर्शन व तकनीकों के अभ्यास का प्रचलन सर्वमान्य हुआ है।

12.3 चिकित्सीय एवं मनःचिकित्सीय समाज कार्य (Medical and Psychatric Social Work)

हमारे समाज में यह कहा जाता है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है, अर्थात् मानव जीवन में स्वस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। समाज कार्य इस बात पर बल देता है कि जीवन में सम्पूर्णता समग्रता प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है कि प्रत्येक व्यक्ति को एवं पूर्ण सुखी जीवन व्यतीत करने के अवसर मिलें। परन्तु यह तभी सम्भव है जब व्यक्ति समाज में एक दूसरे की इस प्रकार सहायता करे कि व्यक्ति के जीवन में समग्रता की प्राप्ति पर बल दिया जा सके। इस प्रकार समाज कार्य के माध्यम से सहायता मूलक कार्यों को सम्पन्न किया जाता है और प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में सम्पूर्णता की प्राप्ति पर बल दिया जाता है। समाज कार्य के एक क्षेत्र एवं विशेषीकरण के रूप में चिकित्सकीय एवं मनश्चिकित्सकीय समस्याओं में ग्रस्त व्यक्तियों की सहायता की जाती है, और जहाँ तक संभव हो, कि पीड़ित व्यक्ति के लिए ऐसी पस्थितियों को विकसित करने का प्रयास किया जाता है, कि पुनः समस्यायें उत्पन्न ही न हो चिकित्सकीय एवं मनः चिकित्सकीय समस्याओं से पीड़ित व्यक्तियों को सहायता देने के लिए 19वीं सदी में मनः चिकित्सकीय समाज कार्य का विकास हुआ।

मनोचिकित्सकीय समाज कार्य में चिकित्सकीय समाजिक कार्यकर्ता स्वास्थ्य में विभिन्न आयामों एवं क्षेत्रों जैसे चिकित्सालयों एवं लघु चिकित्सालयों में कार्य करने के साथ-साथ स्वास्थ्य निवारण और सामाजिक उपचार एवं पुनर्वासन में भी कार्य करता है। इन क्षेत्रों में समाजिक कार्यकर्ता व्यक्तियों के खराब स्वास्थ्य एवं बाधिताओं के कारण उत्पन्न मनो सामाजिक समस्याओं से निपटने के लिए सहायता देता है। ताकि वे अपनी क्षमता के अनुरूप एक सन्तोष प्रद एवं उत्पादकतापूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें।

समाज में पुरातन काल से ही असहाय एवं पीड़ित व रोगी की सहायता का प्रचलन रहा है और प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे की सेवा करना अपना सामाजिक उत्तरदायित्व समझता रहा है। समाज में मानवता के आधार पर परम्परागत् समाज सेवी आश्रम, विद्यालय, चिकित्सालय आदि के माध्यम से जन समुदाय को सेवा प्रदान करते रहे हैं।

ज्ञातव्य हो कि भारतीय समाज में सेवा व सहायता प्रदान करने की परम्परा सदियों से चली आ रही हैं। इतिहास के पन्नों से स्पष्ट होता है कि विशेषकर रूग्णता, विपन्नता, अपंगता, निराश्रितकी स्थित में सहायता करना व्यक्ति अपना धर्म समझता था। प्राचीन काल में सेवा करना धार्मिक कार्य व पुण्य कार्य समझा जाता था। एक मानव के नाते सक्षम व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की सेवा करना अपना कत्र्तव्य समझता रहा है परन्तु सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ इस विचार धारा में भी परिवर्तन आया और वर्तमान युग में सहायता प्रदान करने का आधार मानवतावादी दृष्टिकोण बन गया। अब परिस्थितियों ने नया रूप धारण किया जिसमें धर्म या मानवता के आधार पर सहायता प्रदान करना कठिन प्रतीत होने लगा। फलस्वरूप विशिष्टता व वृत्ति का चलन हुआ और यही वह स्थिति

थी जब समाज सेवा ने समाज कार्य का रूप धारण किया तथा धर्म एवं मानवता के आधार पर सहायता प्रदान करने के स्थान व्यवसायिक रूप से कार्य करना समाज की प्रवृति बनने लगी।

समाज कार्य के वृत्तिक/व्यावसायिक विकास के अनुक्रम में सर्वप्रथम चिकित्सकीय समाज कार्य का अवलोकन किया जा सकता है। स्वास्थ्य के विकास, रोग निवारण, रोकथाम व उपचार के क्षेत्र समाज कार्य प्रणालियों व तकनीकों के उपयोग को ही चिकित्सीय समाज कार्य कहा जाता है। समाज में निरन्तर हो रहे परिवर्तन, प्रास्थानीकरण औद्योगीकरण व नगरीकरण के फलस्वरूप संयुक्त परिवारों के विघटन व स्वरूपों में परिवर्तन तथा दिन प्रतिदिन की अर्थिक जटिलताओं के कारण व्यक्ति की अपनी व्यक्तिगत एवं परिवारिक व्यस्तता में वृद्धि होती जा रही है इसके परिणाम स्वरूप अनेक प्रकार की मनो-समाजिक समस्यायें व्यक्ति के जीवन मे आ रही है। इनके निवारण तथा निराकरण में चिकित्सकीय समाज कार्य की महत्वपूर्ण भूमिका है। इन्हीं दृष्टिकोण को दृष्टिगत रखते हुए चिकित्सकीय समाज कार्य की उपयोगिता महत्व व मान्यता में वृद्धि हुई है।

चिकित्सकीय समाज कार्य की अर्थ व परिभाषायें

स्वास्थ्य की आधुनिक अवधारणा के मान्यता पूर्व सर्वमान्य विश्वास था कि औषधि अथवा शल्य चिकित्सा ही रूग्णता का एक मात्र और अन्तिम उपचार है। परन्तु वैज्ञानिक प्रगति, आयुर्विज्ञान में वृद्धि, समाज कार्य व अन्य सामाजिक विज्ञानों के विकास के परिणाम स्वरूप यह तथ्य सामने आया कि रोगी के रूप में व्यक्ति की रोग ग्रस्तता में प्रायः दो पहलूओं का समावेश होता है -

1. निरोधात्मक तथा उपचारात्मक पक्ष
2. शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक पक्ष

स्वास्थ्य के मानसिक, सामाजिक व शारीरिक तीन महत्वपूर्ण पक्षों के साथ यह सर्वमान्य हो चुका है कि रोगी के स्वास्थ्य सुधार में औषधि का जितना महत्व है उतना ही महत्व उसकी मानसिक व सामाजिक स्थितियों का भी है। इसी मान्यता के साथ चिकित्सा के क्षेत्र में समाज कार्य के अभ्यास की आवश्यकता को स्वीकार किया गया है; फलस्वरूप समाज कार्य की एक नवीन शाखा के रूप में चिकित्सकीय समाज कार्य के माध्यम से समाज कार्य की पद्धति दर्शन व तकनीकों के अभ्यास का प्रचलन सर्वमान्य हुआ है।

चिकित्सकीय समाज कार्य मुख्य रूप से वैयक्तिक सेवा कार्य प्रणाली द्वारा तीन स्तरों पर सम्पन्न होता है -

1. रोगग्रस्त व्यक्ति से सम्बन्धित कार्य
2. रोगी के परिवार तथा समुदाय से सम्बन्धित सेवा कार्य
3. चिकित्सालय व्यवस्था, नियोजन व प्रशासन से सम्बन्धित कार्य

चिकित्सकीय समाज कार्य, समाज कार्य की एक विशिष्टता है, जिसके अन्तर्गत समाज कार्य का ऐसा व्यवसायिक उपचारात्मक प्रयोग किया जाता है, जिसके द्वारा रोगियों को उपलब्ध निवारक निदानात्मक एवं उपचारात्मक सुविधाओं के अधिकतम् उपयोग द्वारा समुचित रूप से समायोजित सामाजिक प्राणी बनाने के लिए उसे मानसिक सामाजिक आर्थिक, शारीरिक स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करने हेतु सहायता प्रदान की जाती है।

विभिन्न विद्वानों ने चिकित्सकीय समाज कार्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है -

1. प्रो0 एच0एम0 पाठक के अनुसार - ''चिकित्सकीय समाज कार्य उन रोगियों की सहायता प्रदान करने से सम्बन्धित है जो सामाजिक व मनोवैज्ञानिक कारकों के कारण उपलब्ध चिकित्सकीय सेवाओं का प्रभावी रूप से उपयोग करने में असमर्थ होते हैं।

2. प्रो0 राजाराम शास्त्री के अनुसार - ''चिकित्सकीय समाज कार्य का मुख्य ध्येय यह होता है कि व चिकित्सकीय सुविधाओं का उपयोग रोगियों के लिए अधिकाधिक फलप्रद एवं सरल बनायें तथा चिकित्सा में बाधक मनोसामाजिक दशाओं का निराकरण करें।

3. अमेरिका के समाज कार्यकताओं के राष्ट्रीय संघ के अनुसार - चिकित्सकीय समाज कार्य स्वास्थ्य एवं चिकित्सकीय देख-रेख के क्षेत्र में समाज कार्य की पद्धतियों एवं दर्शन का उपयोग स्वीकार करता है।

चिकित्सकीय समाज कार्य, समाज कार्य के ज्ञान तथा पद्धतियों के उन पक्षों का विस्तृत उपयोग करता है - जो स्वास्थ्य तथा चिकित्सा सम्बन्धी समस्याओं से ग्रस्त व्यक्तियों की सहायतार्थ विशिष्ट रूप से उपयुक्त है।

इस प्रकार यह विदित है कि चिकित्सकीय समाज कार्य स्वास्थ्य एवं चिकित्सकीय देख रेख के क्षेत्र का वास्तविक समाज कार्य का एक विशिष्ट क्षेत्र है। इसमें समाजिक कार्यकर्ता मनसिक एवं मनोसामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति की रोकथाम तथा उनका निदान एवं उपचार करता है और रोगी को प्रदान की जा रही चिकित्सकीय सेवाओं को अधिकतम लाभ उठाकर शीघ्रतम स्वस्थ होना तथा पूर्ववत् पुनस्र्थापित होने में सहायता प्रदान करता है।

विशेषतायें

1. चिकित्सकीय समाज कार्य व्यवसायिक समाज कार्य की विशिष्ठ व्याख्या है।
2. चिकित्सकीय समाज कार्य व्यवसायिक सहायता प्रदान करने का कार्य करता है।
3. इसके द्वारा रोगियों की उपलब्ध निवारक निदानात्मक तथा उपचारात्मक सुविधा से उपलब्ध कराई जाती है।
4. यह सामाजिक सहायता प्रदान करता है।
5. सहायता द्वारा रोग ग्रस्त व्यक्ति चिकित्सकीय सेवाओं का अधिकत लाभ उठाकर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करता है और समाज में अपनी क्रिया में पूर्ववत लगता है।

चिकित्सकीय समाज कार्य के क्षेत्र व उपयोगिता

मुख्य रूप से चिकित्सकीय समाजकार्य उपयोगिता के निम्नलिखित क्षेत्र है -

1. सार्वजनिक स्वास्थ्य कार्यक्रम
2. प्रसूति एवं बाल कल्याण
3. रति रोग चिकित्सा केन्द्र
4. बाल कक्ष
5. आरोग्य सदन
6. मानसिक चिकित्सालय और मनोचिकित्सा केन्द्र
7. जन सामान्य के अस्पताल

8. ग्राम स्वास्थ्य इकाई

9. क्षय रोग आरोग्य निवास

10. अविवाहित माताओं की समस्याएँ

11. सामुदायिक विकास व कल्याण सम्बन्धी स्वास्थ कार्यक्रम

12. मधुमेह, कैंसर और कुष्ठ ग्रस्त रोगी तथा विकलांग व्यक्ति, एड्स रोगी की समस्यायें

13. व्यक्तिगत परामर्श तथा स्वास्थ्य समस्या के सम्बन्ध में अप्रत्यक्ष सेवा

उपयोगिता

आधुनिक समय से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो चुकी है कि स्वास्थ्य पहलुओं से ही वही है बल्कि उसका सम्बन्ध व्यक्ति के सामाजिक एवं मानसिक पहलुओं से भी है। अतः रोग से जनित मानसिक सामाजिक, मनो सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं के निराकरण में चिकित्सीय समाज कार्य का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है।

रोगी की सामाजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन

रोग के पूर्ण एवं समुचित निदान हेतु रोगी की सामाजिक पृष्ठभूमि की जानकारी भी निदानकर्ता को होना चाहिए अतः सामाजिक कार्यकर्ता की यह जिम्मेदारी दी जाती है। कि वह रोगी के मनोसामाजिक पृष्ठभूमि का समुचित विवरण तैयार करें और अवश्यतानुसार उन जानकारियों को चिकित्सक को देकर रोग के निदान में सम्यक योगदान दे जिससे रोगी को व्यक्तिगत मानसिक दबाओं से मुक्ति कराने में सहायता मिले। अर्थात् रोगी की समस्याओं के मनोसामाजिक कारणों की खोज करके ही समुचित निदान सम्भव हो सके।

रोगी को स्वयं समस्या समाधान में सक्षम बनाया जा सके और उसके अन्दर अन्तर्दृष्टि को विकसित कर उसे ऐसा सशक्त बनाने का प्रयास चिकित्सकीय समाज कार्य के माध्यम से किया जाता है कि वह अपनी समस्याओं के समाधान में स्वयं ही सक्षम हो जाए। साथ-साथ रोगी की इच्छाशक्ति का विकास करके निराशाजनक स्थित को रोकने उसका पस्थितियों के हुए पर्यावरण में सामाजिक स्थापित्व को लाने एवं समुचित परिमार्जन के विकास पर बल दिया जाता है जिससे पुनः रोगी को मानसिक मनो सामाजिक रोगों का सामना न करना पड़े और वह समाज में रहकर अपने जीवन की सम्पूर्णता को प्राप्त कर सके।

मनः चिकित्सकीय समाज कार्य

मनः चिकित्सकीय समाज कार्य समाज कार्य की वह शाखा है जिसका सम्बन्ध मानसिक रोगों एवं मनो रोग विज्ञान से है तथा विज्ञान के साथ ही व्यवहार में आता है। मनः चिकित्सकीय समाज कार्य को सर्वप्रथम 1931 में संयुक्त राज्य अमेरिका में वहाँ की स्थापित मनदण्डों की सलाहकार परिषद की कार्यसमिति ने परिभाषित किया। यद्यपि उनकी परिभाषा लगभग 100 वर्ष पुरानी है परन्तु आज के सन्दर्भ में भी वह पूरी तरह खरी उतरती है। इस परिभाषा के अनुसार - मनःचिकित्सकीय समाजकार्य, समाज कार्य की वह शाखा है जिसका विकास मनोरोग विज्ञान (मनः चिकित्सा विज्ञान) के साथ हुआ है इसका प्रयोग ऐसे प्रशिक्षित सामाजिक कार्यकर्ता या व्यक्ति के द्वारा किया जाता है, जो कुछ सीमा तक मनः चिकित्सा विज्ञान के ज्ञान से युक्त होते है और वे इस ज्ञान को वैयक्तिक समाज कार्य के व्यवहार में उपयोग करते है मनः चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता सामाजिक असमायोजन के उन सेवार्थी के साथ कार्य करता है, जिनमें मनोस्वायु विकृति अथवा मनोविकृति की आरम्भिक अवस्था में काम करने की विशेष आवश्यकता है।

उन सेवार्थियों के साथ कार्य करता है, जिनमें व्यक्तिगत कठिनाई सम्बन्धी तथा मनोविकृति के सेवार्थियों से आरम्भिक अवस्था में ही निपटने का विशेष महत्व होता है। यह कार्य वैयक्तिक समाजकार्य, शोधकार्य, कार्यकारी प्रशासनिक अथवा शैक्षणिक हो सकता है।

इस प्रकार मनः चिकित्सकीय समाजकार्य वृत्तिक समाज कार्य की वह विशिष्ठ शाखा है जो अपने विशिष्ट एवं वैज्ञानिक ज्ञान तथा नैपुष्य द्वारा मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी उन संस्थाओं में व्यवहार में आता है जिन संस्थाओं का प्रमुख लक्ष्य मानसिक रोगों का अध्ययन, उनका उपचार तथा उनकी रोकथाम करना है।

मनः चिकित्सकीय समाज कार्य का उद्भव

मनः चिकित्सकीय समाज कार्य का उद्भव संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ। बीसवीं सदी के आरम्भ में कु0 मैरी जैरट जो बोस्टन साइकोपैथिक हॉस्पिटल में कार्य कर रही थी, उन्होंने मानसिक रोगियों का अन्तरंग अध्ययन किया तथा इन रोगियों के साथ इन रोगियों के साथ किस प्रकार समाज कार्य किया जा सकता है इसकी रूप रेखा तैयार की। 1905 में सर्वप्रथम मैसाचुसेट्स जनरल हॉस्पिटल में समाज सेवा विभाग की स्थापना की गई और यहाँ के कार्यकर्ताओं को चिकित्सालय के न्यूरोलजिकल क्लीनिक को चिकित्सालय के न्यूरोलाजिकल क्लीनिक रोग के सही निदान तथा प्रभावी उपचार के लिए नियुक्त/प्रयुक्त किया जाने लगा।

भारत में मनः-चिकित्सीय समाज कार्य

भारत वर्ष में सर्वप्रथम 1937 में मनश्चिकित्सकीय कार्यकर्ता की नियुक्ति तत्कालीन सर दोरबजी टाटा ग्रेजुएट स्कूल आफ सोशल वर्क (वर्तमान में टाटा इन्स्टीटूयूट आफ सोशल साइंसेज) के नाम से जाना जाता है, के 'चाइल्ड गाइडेन्स क्लीनिक' में पहले समाजिक कार्यकर्ता की नियुक्ति हुई। यह कार्यकर्ता मुख्यतः उन बालकों व उनके परिवारों की सहायता करता था जो व्यवहार एवं मनोवृत्तियों सम्बन्धी समस्याओं के लिए इस निदान केन्द्र में आते थे।

इस प्रकार भारत वर्ष में मनः चिकित्सकीय समाज कार्य एक वृत्ति के रूप में केवल सात दशक पुराना है।

सत्तर से भी अधिक वर्षों के अथक प्रयास के बाद भी देश के सभी मानसिक चिकित्सालयों तथा मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी संस्थाओं में सामाजिक कार्यकताओं की नियुक्ति नहीं की गई। केवल मद्रास, रांची तथा बंगलोर को छोड़कर किसी अन्य मानसिक चिकित्सालय में सामान्यतः एक से अधिक सामाजिक कार्यकर्ता नहीं है।

भारतवर्ष में मनः चिकित्सकीय समाज कार्य प्रशिक्षण की सुविधायें

भारत वर्ष में एक मनः चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता के लिए दो वर्ष का पूर्णकालीन स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम 'मास्टर आफ सोशल वर्क या मास्टर आफ आट्स इन सोशल वर्क उत्तीर्ण करना अनिवार्य है। इस पाठ्यक्रम के अन्तर्गत उसे मनः चिकित्सकीय समाज कार्य के एक विशिष्ट पाठ्यक्रम को पढ़ना पड़ता है। दो वर्ष की अवधि में कक्षाओं के अन्दर अध्ययन साथ-साथ उन्हें व्यावहारिक प्रशिक्षक एवं अभ्यास हेतु दो-तीन महीनों के लिए किसी मानसिक चिकित्सालय या मानसिक संस्थान में भेजा जाता है।

राष्ट्रीय स्तर पर दो ऐसे संस्थान एक रांची तथा दूसरा बैंगलोर में है जहाँ पहले डी0पी0एस0डब्ल्यू0 (डिप्लोमा इन साइकियाट्रिक सोशल वर्क) तथा अब एम0फिल0 की उपाधि प्राप्त की जाती है।

मनः चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ताओं का राष्ट्रीय स्तर पर संगठन है जिसकी स्थापना रांची में डा0 आर0के0 उपाध्याय द्वारा 1970 में की गई इस संगठन का नाम ''भारतीय मनःचिकित्सीय की स्थापना का उद्देश्य मानसिक स्वास्थ्य तथा समाज कार्य के क्षेत्र में शोध अध्ययनों को प्रोत्साहन देना। उनका प्रकाशन सदस्यों के लिए विचार गोष्ठी, सम्मेलन तथा पुनर्बोधन कार्यक्रम एवं कार्य शाला का आयोजन करके मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में सुधार लाना है।

मनः चिकित्सकीय समाज कार्य की विशेषतायें

1. मनः चिकित्सकीय समाजकार्य, समाज कार्य की एक विशिष्ट शाखा है।
2. इस शाखा में सम्बन्धित सामाजिक कार्यकर्ता, मनः चिकित्सा विज्ञान के प्रारम्भिक ज्ञान से युक्त होता है।
3. ये कार्यकर्ता सामान्यतः उन संस्थाओं में कार्य के माध्यम से मानसिक रूग्णता में व्यक्तियों की सहायता उपलब्ध कराकर मनो सामाजिक समस्याओं को दूर करने का प्रयास करते है।
4. मनः चिकित्सकीय समाज कार्य में प्रमुख रूप से वैयक्तिक समाज कार्य की विधि का प्रयोग किया जाता है, और आवश्यकतानुसार कार्यकर्ता अन्य विधियों की सहायता भी लेता है।

मनः चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता के कार्य

मानसिक रोग के निदान एवं उपचार एवं रोगों की रोकथाम हेतु रोग पीड़ित व्यक्ति के बारे में पूर्व जानकारी प्राप्त करना आवश्यक होता है। इस कार्य के लिए सही सूचनादाता का प्रयोग किया जाता है जो रोगी के बारे में पूर्ण जानकारी मनः चिकित्सीय कार्यकर्ता को दे सके। इस कार्य के लिए रोगी के माता-पिता, जीवन साथी, भाई-बहन इत्यादि के माध्यम से सूचनायें प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। रोगी के बारे में प्रारम्भिक सूचनायें, जैसे नाम, जाति, धर्म, शिक्षण एवं प्रशिक्षण, व्यवसाय ,मासिक आय ,नगरीय या ग्रामीण पृष्ठभूमि एवं पूरा पता, रोगी के वर्तमान शिकायतों के लक्षण एवं वर्तमान रोग की शिकायत कब से प्रारम्भ हुई, वर्तमान रोग से पूर्व रोगी के शारीरिक तथा मानसिक रोगों की जानकारी, रोगी के परिवारिक पृष्ठभूमि की सम्पूर्ण जानकारी और रोगी के व्यक्तिगत व्यवसायिक एवं सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विशेषताओं के बारे में जानकारी आदि को प्राप्त करना है।

उपरोक्त जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् रोगी का मानसिक परीक्षण तथा निदान विभिन्न संस्थाओं द्वारा भिन्न-भिन्न रूप से किया जाता है। मानसिक रोगों की पूर्ण जानकारी के पश्चात् उपचार की प्रक्रिया कर्ता द्वारा प्रारम्भ की जाती है।

उपचार - मानसिक रोगों का सही उपचार इन्हीं कारणों में समाहित होता है। इसलिए उपचार के लिए कारणों को बरीकी से समझना अति आवश्यक होता है। कारणों को समझ कर परिवार के सहयोग से प्राप्त कारणों का निराकरण कर रोगी के उपचार में सहयोग दिया जाता है।

१. अनुवर्ती प्रयास - सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा उपचार के पश्चात् चिकित्सालय छोड़कर जाने वाले रोगियों के घर बारे में जानकारी प्राप्त की जाती जिससे पुनः वह मानसिक रोग का शिकार न हों।

२. पुर्नवास - मनः चिकित्सकीय कार्यकर्ता असाधारणा रोगियों की स्वयं देखभाल करके उन्हे सक्षम बनाने का प्रयास करता है जिससे रोगी पुनः अपने जीवन में समायोजन स्थापित कर सके। पुर्नवास के दौरान रोगी को व्यवसायिक प्रशिक्षण दिया जाता है ताकि वह अपने कार्यों में व्यस्त रहे तथा अपनी दिनचर्या को समायोजित कर सके।

12.4 सारांश(Summery)

चिकित्सकीय एवं मनः चिकित्सीय समाज कार्य, समाज कार्य की एक विशिष्टता है, जिसके अन्तर्गत समाज कार्य का ऐसा व्यवसायिक उपचारात्मक प्रयोग किया जाता है, जिसके द्वारा रोगियों को उपलब्ध निवारक निदानात्मक एवं उपचारात्मक सुविधाओं के अधिकतम् उपयोग द्वारा समुचित रूप से समायोजित सामाजिक प्राणी बनाने के लिए उसे मानसिक सामाजिक आर्थिक, शारीरिक स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करने हेतु सहायता प्रदान की जाती है।

12.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Question for Practice)

1. चिकित्सीय समाज कार्य को परिभाषित कीजिए तथा इसके क्षेत्र बताइये।
2. चिकित्सकीय समाज कार्य के आशय को सटासट कीजिये ।
3. मनःचिकित्सीय समाज कार्य को समझाइए।
4. मनःचिकित्सीय समाज कार्य में सामाजिक कार्य कर्ता की भूमिका की चर्चा कीजिये |
5. मनःचिकित्सीय समाज कार्य की कुशलताओं को ग्रहण कर उसको क्षेत्र कार्य में परिवर्तित कर कार्यानुभव को अपने क्षेत्र कार्य में पूर्ण कर उसकी प्रक्रिया विस्तार से लिखिए |
6. स्वास्थ्य की मानसिक, शारीरिक एवं पारिवारिक स्तर पर आवश्यकता का वर्णन कीजिये |
7. चिकित्सकीय समाज कार्य की क्षेत्र कार्य के सन्दर्भ मे रुपरेखा प्रस्तुत कीजिये |
8. सामाजिक स्वास्थ्य से क्या आशय है ?
9. मनोसामाजिक कार्यकर्ता के भूमिका पर प्रकाश डालिए |

१०. भारत में मनः चिकित्सीय समाज कार्य पर एक निबन्ध लिखिए।

12.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference)

1. अहमद रफीउद्दीन मिर्जा, समाज कार्य दर्शन एवं प्रणालियां, शाइनिंग प्रेस लखनऊ, 2004
2. सिंह, सुरेन्द्र, पी.डी. मिश्र, समाज कार्य: इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियां, न्यू राॅयल बुक कम्पनी लखनऊ, 2010
3. मदन जी0आर. अमित अग्रवाल, परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन दिल्ली, 2012
4. जयसवाल, सीताराम, शिक्षा में निर्देशन और परामर्श अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा, 2011
5. द्विवेदी राकेश, समाज कार्य व्यावसाय: विकास एवं चुनौतियां, न्यू रायल बुक कम्पनी लखनऊ, 2007
6. आलम शाह, मो. गुफरान, निर्देशन एवं परामर्श का मूलभूत आधार, ज्ञानदा प्रकाशन नई दिल्ली, 2011
7. सिंह मंजीत, व्यावसायिक समाज कार्य का आविर्भाव, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008
8. सिंह मंजीत, समाज कार्य के मूल तत्व, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008

9. सूदन, सिंह कृपाल समाज कार्य: अभ्यास एवं सिद्धान्त न्यू रा ॅयल बुक पब्लिकेशन लखनऊ

10. Freidlander, W.A., Concept and Methods of Social Work.

11- Freidlander, W.A., Introduction to Social welfare.

12- Khinduka S.K., Social Work in India.

13- Chowdhary, D.k.Paul, Introduction to Social Work.

इकाई-13

अनुसूचित जाति एवं जनजाति एवं पिछडे वर्ग का कल्याण

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य (Objectives)

13.1 प्रस्तावना (Preface)

13.2 भूमिका (Introduction)

13.3 पिछडे वर्ग, अनुसूचित जाति एवं जनजाति कल्याण

(Welfare of SC & ST and Other backward class)

13.4 सारांश (Summary)

13.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Question for Practice)

13.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

13.0 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

1. पिछडे वर्ग, अनुसूचित जाति एवं जनजातियों की समस्याओं को जान सकेंगे।
2. पिछडे वर्ग, अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के कल्याण हेतु संचालित कार्यक्रमों के बारे में जान सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना (Preface)

समाज के कमजोर एवं पिछडे वर्गों को सामाजिक आर्थिक आधारों पर परिभाषित किया जा सकता है| वे वर्ग जो जीवन के न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ हो, जिनकी आय गरीबी रेखा से नीचे हो, जो जीवन निर्वाह के लिए मजदूरी पर आश्रित हो तथा मजदूरी का स्वरूप अनियमित और ऋतुओं के अनुसार परिलक्षित होता हो, जो उत्पादन में सक्रिय सहयोग प्राप्त करने के बावजूद भी शोषण के शिकार है। जिनके पास इतनी लागत की पूँजी नहीं है कि वे कच्चे माल के क्रय द्वारा उत्पादन कर सके। उपर्युक्त के आधार पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ा वर्ग, मुसलमान में कुछ समूहों/वर्गो को भूमिहीन कृषक मजदूरी, बंधुआ मजदूरी परम्परागत कारीगरों जिनकी कुल जनसंख्या में भागीदारी लगभग 60 प्रतिशत से ऊपर है को कमजोर वर्गो में रखा जा सकता है। यह भारतीय जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग है।

13.2 भूमिका (Introduction)

पिछडे वर्ग, अनुसूचित जाति एवं जनजाति वर्गो के लोग कमजोर हैं कमजोरी का कारण गरीबी एवं अशिक्षा है गरीबी एंव अशिक्षा का सीधा सम्बन्ध शोषण और अत्याचार से है। जिसके कारण इनके ऊपर अन्य

वर्गो या दबंग लोगों द्वारा अत्याचार, बलात्कार, नंगे घुमाए जाने आदि का कार्य किया जाता है। जिसके कारण यह वर्ग शोषण एवं पीडा का अनुभव करते हैं। सामाजिक कार्यकर्ताओं के द्वारा इन वर्गों के कल्याण के लिये चलायी जा रही योजनाओं के लाभों को पहुंचाने का कार्य किया जाता है।

13.3 पिछडे वर्ग, अनुसूचित जाति एवं जनजाति कल्याण (Welfare of SC, ST and Other backward classes)

कमजोर वर्ग का आशय ऐसे वर्ग से है जो समाजिक-ऐतिहासिक कारणो से अपेक्षाकृत पीछे रह गए है। ये समाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े हैं। उनको जीवन की आधारभूत सुविधाएं रोटी, कपड़ा और मकान उपलब्ध नहीं है। आर्थिक उपरिग्रह ने ऐसे वर्गो को समाज के हाशिए पर धकेल दिया है। इनके पास कृषि योग्य भूमि का अभाव है। मजदूरी ही जीवन यापन का साधन है। ये लोग शोषण, उत्पीड़न, अशिक्षा, और कुपोषण आदि से ग्रस्त है। अधिकतर गरीबी के दुष्चक्र (ऋण जाल) में फंसे है।

कमजोर वर्गो की समस्याएं

कमजोर वर्गो में निम्नवत समस्याएं देखी जा सकती है-

1. गरीबी एवं बेरोजगारी की समस्या।
2. शिक्षा एवं स्वास्थ्य की समस्या।
3. मलिन बस्ती, आवास एवं पेयजल की समस्या।
4. शोषण एवं उत्पीड़न की समस्या।
5. बंधुआ मजदूर बेगार एवं बाल व श्रम की समस्या।
6. भूमिहर, खेतीहर, मजदूर की समस्या।
7. बाल श्रम एवं बाल विवाह की समस्या।

पिछड़े वर्गो के अधिकांश लोग खेतिहर मजदूर हैं क्योंकि इने पास कृषि योग्य भूमि का अभाव है। अतः अनियमित मजदूरी ही इनके जीवन का सहारा है। इन वर्गो के अधिकांश लोग असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत हैं जिससे वे शोषण की समस्या से ग्रस्त हैं इन वर्गो की महिलाएं ईट-भट्ठे चारा बगानों, तेंदू पत्ता तोड़ने, मैला साफ करने आदि कार्यो में लगी है। जिनमें से अधिकांश शरीरिक, मानसिक, आर्थिक व यौनिक शोषण की शिकार है दासी प्रथा ,बंधुआ मजदूरी, बाल श्रम के लिए बाध्य किया जाता है। इन वर्गो के लिए किसी प्रकार की ठोस सामाजिक सुरक्षा का अत्यन्त प्रभाव है।

(1) कमजोर वर्गो में अनु0जा0 अनु0जनजाति उक्त वर्णित समस्याओं के अतिरिक्त कुछ विशेष समस्याओं यथा-अश्पृश्यता की समस्या, अस्पृश्यों में अश्पृश्यता की समस्या जो उनके सामाजिक गतिशीलता में बाधक है। इसके अतिरिक्त सामाजिक सम्पर्क व खानपान् की समस्या, धार्मिक संस्कारों को सम्पादित करने की समस्या, निवास करने सम्बन्धी समस्या, परम्परागत व्यवसाय करने की समस्याएं आदि देखी जा सकती है जो उनके सामाजिक आर्थिक गतिशीलता एवं सामाजिक विकास में बाधक है। कभी-कभी इन वर्गो को जबरन मतदान करने से रोका भी जाता है जिसके कारण वे लोकतन्त्र में अपना योगदान सुनिश्चित नहीं कर पाते हैं।

(2) अनु0जनजाति के संदर्भ में कुछ विशिष्ट समस्याएं देखी जा सकती है जिसमें दुर्गम निवास की समस्या, स्थान अतिरिक्त कृषि, जंगलों पर अधिकार पर संस्कृतिग्रहण, पुनर्वास, कन्या मूल्य प्रथा, शोषण एवं ऋणग्रस्तता, यौन शोषण एवं वेश्यावृत्ति, भाषा एवं बोली, सरकारी नौकरियों में उचित प्रतिनिधित्व का अभाव, इनके लिए उपलब्ध सुरक्षात्मक एवं विकासात्मक प्रावधानों के समुचित क्रियान्वयन का अभाव राजनीतिक चेतना एवं एकीकरण आदि की समस्याओं से ग्रस्त है जो सामाजिक आर्थिक गतिशीलता और सामाजिक विकास में बाधक है।

उपरोक्त वर्णित समस्याओं से स्पष्ट है कि आज इनके सशक्तिकरण किए जाने की जरूरत है। सशक्तिकरण समग्र परिप्रेक्ष्य में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में होनी चाहिए तभी उनको समाज के मुख्य धारा में शामिल करते हएु राष्ट्र के प्रगति एवं विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है।

पिछडा वर्ग के कल्याण/विकास के लिए प्रावधान

आजादी के बाद जब देश के कानून और संविधान बने तो वंचित तबको के हितों को ध्यान में रखा गया। यथा संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों, नीतिनिर्देशक तत्वों और विभिन्न अनुच्छेदों में उनके लिए सुरक्षात्मक एवं विकासात्मक प्रावधान किए गए। इनके सामाजिक विकास के लिए जहां एक ओर राज्य द्वारा छुआछूत को कानूनी अपराध बनाकर इसके आचरण को विधि के अनुसार दण्डनीय घोषित किया गया वहीं इनके आर्थिक विकास को सुनिश्चित करने के लिए लोकसभा, राज्य विधायिकाओं व सभी सरकारी नौकरियों में आरक्षण के द्वारा इन्हें समाज की मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया गया।

कमजोर वर्ग की सभी प्रकार के शोषण एवं अन्याय से रक्षा करके समाज में समानता के सार पर स्थापित करने और सम्मानजनक जीवन स्तर उपलब्ध कराने के लिए अनेक सामाजिक अधिनियम जैसे नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955 (1977), बंधुआ श्रम उन्मूलन 1976, प्रसूति लाभ अधिनियम 1961, बगान श्रमिक अधिनियम 1951, अनुसूचित जाति तथा जनजाति अत्याचार निवारक अधिनियम 1989 आदि पारित करके इनके लिए संरचनात्मक एवं सुधारात्मक प्रबंध किए गए। निचले स्तर पर लोकतांत्रिक संस्थाओं में इनके प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने के लिए 73वें संविधान संशोधन द्वारा आरक्षण का प्रावधान किया गया। ताकि भारत के निर्माण में वे अपनी भूमिका महसूस कर सके।

शिक्षा जीवन का अमृत है लेकिन कमजोर वर्ग शिक्षा से कोसो दूर अंधकार एवं फटेहाल जिंदगी जी रहे हैं। शिक्षा के संदर्भ मे इन वर्गो की महिलाओं की स्थिति और भी चिंताजनक है। । इन वर्गो को शिक्षा उपलब्ध कराना सरकार की अहम जिम्मेदारी है इसके लिए विभिन्न शिक्षण एवं तकनीकी संस्थाओं यहां तक कि निजी शिक्षण संस्थाओं में भी सरकार आरक्षण की व्यवस्था उपलब्ध कराने के लिए कटिबद्ध हैं साथ ही साक्षरता से सम्बन्धित अनेक कार्यक्रमों यथा सर्व शिक्षा अभियान कस्तूरबा गांधी शिक्षा योजना, कन्या विद्यालय योजना, शिक्षा आपके द्वार योजना तथा मिड-डे मिल योजना आदि क्रियान्वित किए जा रहे है जिसका उद्देश्य साक्षरता विकास द्वारा शोषण एवं अन्याय से इन वर्गो की रक्षा करना और उन्हें स्वावलम्बी बनाना है।

गरीबी अभिशाप है, गरीबी एवं बेरोजगारी में चोली दामन का सम्बन्ध हैं। गरीबी के कारण पिछड़े वर्ग का जीवन जोखिम में हैं क्योंकि इन्हें उपभोक्ता का न्यूनतम स्तर भी उपलब्ध नहीं है। शिक्षा और स्वास्थ्य का गरीबी से सीधा सम्बन्ध है। गरीबी पर सीधा प्रहार करने के उद्देश्य से 'गरीबी हटाओ' नारे के साथ इसकी ठोस शुरूआत पंाचवी पंचवर्षीय योजना में की गयी। इस संदर्भ मे अनेक कार्यक्रमों यथा 'स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना (1997), स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (1997), सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (2001) प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना द्वारा निर्माण योजना (05-06), राजीव गांधी विद्युत योजना

(अप्रैल 05) तथा रोजगार गारंटी योजना शुरू किया गया है। उपरोक्त योजनाओं को उद्देश्य गरीबी उन्मूलन और रोजगार प्रदान करने के साथ-साथ आधारभूत ग्रामीण ढांचे का निर्माण करना था।

कमजोर वर्गो के अधिकांश लोग आवास एवं पेयजल ओर इनके लिए पीने का स्वच्छ जल भी उपलब्ध नहीं है। शहरों के किनारे सीलन भरे बदबूदार बस्तियों में और गांवों में झोपड़ियां बनाकर रहते हैं अतः इन वर्गो में आवास एवं पेयजल की समस्या देखी जा सकती हैं इनके लिए सरकार द्वारा इंदिरा आवास योजना, समग्र आवास योजना (2000) तथा भारत निर्माण योजना (2005) के तहत 60 लाख आवासों के निर्माण करने की योजना है। ताकि कमजारे वर्गो को आवास मुहैया कराया जा सके। इन वर्गो की बस्तियों में स्वच्छ जल की उपलब्धता न होने के कारण ये लोग जल जनित संक्रामक बिमारियों यथा डायरिया, पीलिया, पेचिस, टाइफाइड आदि से ग्रस्त हैं इसके निवारण के लिए सरकार द्वारा स्वजल धारा योजना, राजीव गांधी पेयजल योजना आदि संचालित किया जा रहा है जिसका उद्देश्य इन वर्गो को पीने का साफ पानी उपलब्ध करा कर इनके स्वास्थ्य की रक्षा करना है।

इन वर्गो के पुरुष एवं महिलाओं को सामाजिक सुरक्षा प्रदान के निमित सरकार द्वारा राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना, राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना, राष्ट्रीय मातृत्व एवं प्रसूति सहायता योजना, महिला समृद्धि योजना, अन्त्योदय योजना, स्वधार योजना, इंदिरा महिला योजना, समन्वित बाल विकास योजना आदि संचालित किए जा रहे है। इसका उद्देश्य उन वर्गो की जीवनरक्षा के लिए सामाजिक सुरक्षा चक्र उपलब्ध कराना और उसे मजबूत बनाना है जो भारतीय संविधान का एक लक्ष्य भी है।

स्वास्थ्य अमूल्य निधि है, स्वास्थ्य दीर्घकालिक जीवन बीमा है। स्वस्थ्य शरीर मे स्वस्थ्य मस्तिष्क निवास करता है। स्वास्थ्य और जल का गहरा सम्बन्ध है कमजोर वर्ग स्वास्थ्य समस्या से पीड़ित है, दवाओ के अभाव में करने के लिए अभिशप्त है। कमजोर वर्गो के लिए स्वास्थ्य सुरक्षा,पोषण , जच्चा-बच्चा व सुरिक्षत मातृत्व आदि की सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए सरकार द्वारा राष्ट्रीय टीकाकरण अभियान (1985) मलेरिया उन्मूलन अभियान, पल्स पोलियो कार्यक्रम, राष्ट्रीय एड्स उन्मूलन कार्यक्रम. आदि चलाए जा रहे हैं जिनका उद्देश्य स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार द्वारा इन वर्गो के जीवन और स्वास्थ्य की रक्षा करता है। अभी डब्लू0 एच0 ओ0 द्वारा वर्ष 2005 को मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य सुरक्षा वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है जिसका उद्देश्य मातृत्व तथा शिशु के प्रति विश्व का ध्यान आकर्षित कराना है।

पिछड़े वर्गो का कल्याण

संविधान के अनुच्छेद 15(4) में राज्यों को, नागरिकों के सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गो और अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लोगों के उत्थान के लिए विशेष उपाय करने का अधिकार प्रदान किया गया है। संविधान के भाग 16 में 'कुछ वर्गो से सम्बन्धित विशेष प्रावधान' इसी भाग के अनुच्छेद 340 में पिछड़े वर्गो की स्थिति का पता लगाने के लिए आयोग गठित करने की व्यवस्था की गई है।

सरकार ने अनुच्छेद 15 पर गम्भीरता से विचार किया और 1979 में द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग (मण्डल आयोग) का गठन किया। मण्डल आयोग की सिफारिशों पर लम्बी चर्चा के बाद उस समय की सरकार ने उन्हें लागू करने का फैसला किया और 13 अगस्त, 1990 को एक सरकारी ज्ञापन जारी किया गया, जिसमें अन्य पिछड़े वर्गो को भारत सरकार के अन्तर्गत आने वाली सिविल सेवाओं और पदों में 27 प्रतिशत आरक्षण देने का फैसला किया गया। इस ज्ञापन की प्रतिक्रिया में अन्य पिछड़े वर्गो को आरक्षण देने के खिलाफ व्यापक विरोध प्रकट किया गया और कथित आरक्षण पर प्रश्न उठाते हुए उच्चतम न्यायालय में कई याचिकाएँ दाखिल की गई। उच्चतम न्यायालय ने 16 नवम्बर, 1992 के अपने आदेश द्वारा सभी याचिकाओं का फैसला किया। उच्चतम

न्यायालय ने बहुमत से फैसला किया कि 13 अगस्त, 1990 के सरकारी ज्ञापन को लागू करते समय अन्य पिछड़े वर्गो में सामाजिक दृष्टि से आगे बढ़े हुए 'अति समृद्ध तबके' को आरक्षण के दायरे से बाहर रखा जाएगा।

भारत सरकार ने 'अति समृद्ध तबके' की पहचान करने के लिए 22 फरवरी, 1993 को एक विशेषज्ञ समिति बनाई। इस समिति की सिफारिशों के आधार पर भारत सरकार ने 8 सितम्बर, 1993 को एक ज्ञापन जारी किया, जिसमें अन्य बातों के अलावा भारत सरकार के अन्तर्गत आने वाली नौकरियों में अन्य पिछड़े वर्गो के लोगों को 27 प्रतिशत आरक्षण, और अन्य पिछड़े वर्गो में 'अति समृद्ध तबके' के लोगों को आरक्षण नहीं दिए जाने की व्यवस्था है।

अन्य पिछड़े वर्गो के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण को पूरी तरह लागू करने के उद्देश्य से इन वर्गो को ये सुविधाएँ भी उपलब्ध कराई जा रही हैं- अनुसूचित जातियों-जनजातियों के उम्मीदवारों की ही तरह 13 अक्टूबर, 1994 से उनके लिए भी लिखित परीक्षा और साक्षात्कार के मानदण्डों में ढील दी गई है और 25 जनवरी,1995 को सरकार ने नौकरियों में सीधी भर्ती के वक्त पिछड़े वर्गो के उम्मीदवारों को अन्य पात्रता होने पर ऊपरी आयु सीमा में तीन साल की छूट देने तथा सिविल सेवा परीक्षा में शामिल होने के सात अवसर प्रदान करने के निर्देश भी दिए हैं।

भारत सरकार ने उच्चतम न्यायालय के निर्देशानुसार अन्य पिछड़े वर्गो की केन्द्रीय सूची अधिसूचित कर दी है। इसमें पहले चरण में वे जातियाँ/समुदाय शामिल हैं, जो मण्डल आयोग द्वारा बनाई गई सूची और 21 राज्यों तथा पाँच केन्द्र शासित प्रदेशों की सरकारों द्वारा तैयार की गई पिछड़े वर्गो की सूची में समान रूप से शामिल हैं।

सरकार ने अन्य पिछड़े वर्गो के कल्याण के लिए वर्ष 1998-99 में निम्नलिखित योजनाएं शुरू की थी-

(1) राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग वित्त और विकास निगम- राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग वित्त और विकास निगम का गठन भारत सरकार के कल्याण मंत्रालय के तहत 13 जनवरी, 1992 को किया गया था। कम्पनी अधिनियम की धारा 25 के तहत यह एक कम्पनी है, जिसका उद्देश्य मुनाफा कमाना नहीं हैं इसका उद्देश्य, गरीबी रेखा से नीचे के पिछड़े वर्गो के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए, आमदनी की योजनाओं के वास्ते रियायती दरों पर ऋण देना है। इसकी अधिकृत शेयर पूँजी 1998-99 में 290.40 करोड़ रूपये थी, जो अब बढ़ाकर 390.40 करोड रूपये कर दी गई है।

निगम निम्नलिखित क्षेत्रों के उपयुक्त लाभकर्ताओं को कर्ज/अनुदान के रूप में वित्तीय सहायता देता है - कृषि तथा सम्बन्धित क्षेत्र, दस्तकारी और परम्परिक व्यवसाय, तकनीकी व्यवसया, लघु व्यापार, लघु उद्योग, और परिवहन सेवाएँ।

निगम के पिछड़े वर्गो की उपयुक्त महिला लाभकर्ताओं के लिए 'स्वर्णिमा' नाम से एक विशेष योजना है। इस योजना के तहत उपयुक्त महिलाएं रियायती दरों पर एक लाख रूपये तक की वित्तीय सहायता प्राप्त कर सकती है। इस सम्बन्ध में राज्यों को यह निर्देश दिया गया है कि वे राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग वित्त और विकास निगम (एन0बी0सी0एफ0डी0सी0) की इस योजना के तहत 30 प्रतिशत महिला लाभाकर्ताओं को सहायता दिलवाएं। इसमें से पांच प्रतिशत लाभकर्ताओं को 'स्वर्णिमा' योजना के तहत सहायता दी जाएगी।

(2) परीक्षा पूर्व कोचिंग - इस योजना का उद्देश्य अन्य पिछड़े वर्गो के उम्मीदवारों को कोचिंग देना है, ताकि वे विभिन्न प्रतियोगी/प्रवेश परीक्षाओं में सफल हो सके। इन परीक्षा-पूर्व कोचिंग केन्द्रों मे वही प्रत्याशी प्रवेश पा सकते हैं, जिनके माता-पिता/अभिभावक की सालना आमदनी एक लाख रूपये से कम हो।

(3) अन्य पिछड़े वर्गो के लड़के और लड़कियों के लिए छात्रावास-- इस योजना के तहत उन राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों में छात्रावासों का निर्माण किया जाएगा, जहा अन्य पिछड़े वर्गो की घनी आबादी है और छात्रावासों की कमी है ये छात्रावास माध्यमिक उच्चतर माध्यमिक, कालेज और विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रों के लिए बनाए जाएंगे। इनमें कम से कम एक तिहाई छात्रावास सिर्फ लड़कियों के लिए होंगे। पा ॅच प्रतिशत सीटें विकलांग छात्रों के लिए आरक्षित होंगी। परन्तु यह योजना साधन-सम्पन्न वर्ग के छात्रों के लिए नहीं होगी। इनके निर्माण का आधा खर्च केन्द्र सरकार देगी और शेष खर्चा सम्बन्धित राज्य सरकार को वहन करना होगा। केन्द्र सरकार के संस्थानों और केन्द्र शासित प्रदेशों द्वारा बनाए जाने वाले छात्रावासों का शत-प्रतिशत खर्चा केन्द्र वहन करेगा। इसके लिए भूमि अधिग्रहण, कर्मचारियों के वेतन और रख-रखाव पर होने वाला खर्च सम्बन्धित राज्य सरकारों/केन्द्र शासित प्रदेशों को वहन करना होगा। इस योजना के तहत वर्ष 2001-2002 में आन्ध्र प्रदेश, बिहार, झारखंड, कर्नाटक, सिक्किम, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश में छात्रावास बनाने के लिए 11.45 करोड रूपये जारी किए गए।

(4) अन्य पिछड़े वर्गो के लिए मैट्रिक पूर्व छात्रवृत्ति- छात्रवृतियां ऐसे छात्रों को दी जाएंगी जिनके माता-पिता/अभिभावकों की सालाना आमदनी 44,500 रूपये से अधिक न हो। यह छात्रवृत्ति पहली से दसवीं कक्षा तक उन छात्रों को मिलेगी, जो छात्रावासों में नहीं रहते है और छात्रावासों में रहने वालें दूसरी से दसवीं कक्षा तक के छात्रों को मिलगी। दसवीं कक्षा के अन्त में छात्रवृत्ति बन्द कर दी जाएगी। यह छात्रवृत्ति साल में 10 महीने के लिए मिलेगी। यह उन्हीं छात्रों को मिलेगी, जो राज्य सरकारों/केन्द्र शासित प्रदेशों से मान्यता प्राप्त विद्यालयों में पढ़ते है।

(5) मैट्रिक के बाद पढ़ने वाले अन्य पिछड़े वर्गो के छात्रों का छात्रवृत्ति- इस योजना के अनतर्गत मैट्रिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर के बाद छात्रवृत्ति दी जाती है ताकि वे अपनी पढ़ाई पूरी कर सकें। इससे सम्बन्धित राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों को छात्रवृत्ति के लिए केन्द्र सरकार द्वारा शत-प्रतिशत सहायता दी जाएगी। यह केन्द्रीय छात्रवृत्ति अन्य पिछड़े वर्गो के उन भारतीय नागरिकों के लिए है जो मान्यता प्राप्त संस्थानों में शिक्षा प्राप्त करेंगें उन्ही छात्रों को यह छात्रृवृत्ति मिलेगी, जिनके माता-पिता/अभिभावक की सालाना आमदनी 44,500 रूपये से अधिक नहीं है इसके लिए वर्ष 2001-02 में आन्ध्र प्रदेश, झारखंड, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, मणिपुर, गोवा, असम, जम्मू, और कश्मीर तथा उत्तर प्रदेश, बिहार सिक्किम, त्रिपुरा और उत्तरांचल को 21.96 करोड़ रूपये जारी किए गए। इससे पिछड़े वर्गो के 1,46,958 छात्रों को लाभ हुआ।

(6) अन्य पिछड़े वर्गो के कल्याण के लिए स्वयंसेवी संगठनों को सहायता- इस योजना में स्वयंसेवी क्षेत्र द्वारा अन्य पिछड़े वर्गो की सामाजिक-आर्थिक स्थिति और शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाना शामिल है, ताकि उन्हें समुचित रोजगार मिल सके। इसके लिए ऐसे केन्द्र खोलने और सेवाएं शुरू करने में सहायता दी जाएगी, जो पिछड़े वर्गो को अपनी आय जुटाने के क्रियाकलाप शुरू कराने में मदद कर सके। सहायता की यह मात्रा सरकार द्वारा मेरिट के आधर पर तय की जाएगी तथा यह स्वीकृत खर्च को 90 प्रतिशत तक हो सकती है। इसके लिए वर्ष 2001-02 में गैर -सरकारी संगठनों द्वारा चलाए जा रहे 225 कार्यक्रमों के लिए 3.80 करोड़ रूपये जारी किए गए। इसमें पिछड़े वर्गो के 10,665 लोगो को लाभ पहुंचा।

अनुसूचित जातियाँ

अनुसूचित जाति कल्यण कार्यक्रमों का वर्णन करने से पहले हमें अनुसूचित जाति का अर्थ, उनकी निर्योग्यताओं और समस्याओं को समझना होगा।

अनुसूचित जाति का अर्थ

अनुसूचित जातियाँ भारतीय समाज की वे जातियाँ है जिन्हें अस्पृश्य समझा जाता रहा है और अस्पृश्यता के आधार पर ये जातियाँ अनेक सामाजिक व राजनैतिक निर्योग्यताओं से पीड़ित रही है। वर्तमान समय में हम जिन लोगों के लिए अनुसूचित जातियाँ शब्द का प्रयोग करते हैं उन्हें अस्पृश्य जातियाँ, अछूत, दलित वर्ग, बहिष्कृत जातियाँ शब्दों से सम्बोधित किया जाता रहा है।

प्रो0 मजूमदार ने लिखा है कि -'' अस्पृश्य जातियाँ वे हैं जो विभिन्न सामाजिक व राजनैतिक निर्योग्यताओं से पीड़ित हैं जिनमें से अधिकतर निर्योग्यताओं को परम्परा द्वारा निर्धारित करके सामाजिक रूप से उच्च्च जातियों द्वारा लागू किया गया है।''

डा0 कैलाशनाथ शर्मा ने अपनी पुस्तक में 'अस्पृश्यता' को परिभाषित करते हुए उल्लेख किया है-'' अस्पृश्य जातियाँ वे हैं जिनके स्पर्श से एक व्यक्ति अपवित्र हो जाए और उसे पवित्र होने के लिए कुछ कृत्य करना पड़े।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अस्पृश्यता समाज की अनुसूचित या निम्न जातियों के व्यक्तियों की सामान्य निर्योग्यताओं से सम्बन्धित है जिनके कारण इन लोगों को अपवित्र समझा जाता है और उच्च्च जातियों द्वारा इनका स्पर्श होने पर प्रायश्चित करना पड़ता है।

अनुसूचित जातियों की सामान्य निर्योग्यताएँ

अनुसूचित या अस्पृश्य जातियों को हिन्दू-समाज में परम्परात्मक रूप से निम्न समझा गया है, उनका शोषण किया गया है और उन्हें सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक व आर्थिक अधिकारों से वंचित रखा गया है। वस्तुतः दलितों की यही निर्योग्यताएँ या अयोग्यताएँ है और यही उनकी समस्याएँ तथा पिछड़ेपन के कारण है। इस प्रकार की अस्पृश्यता की समस्या ने निम्न जातियों के स्वस्थ सामाजिक जीवन में अनेक बाधाएँ उत्पन्न कर रखी है। डा0 अम्बेडकर का कथन है कि -''हिन्दुओं का अछूतापन एक अनहोनी घटना है। संसार के किसी दूसरे हिस्से में मानवता ने इसका अनुभव नहीं किया है, किसी दूसरे समाज में इस जैसी कोई चीज है ही नहीं-न तो प्रारम्भिक समाज में और न ही वर्तमान समाज में।''

इस प्रकार अनूसूचित जातियों को समाज में धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व सार्वजनिक क्षेत्रों में उन सामान्य अधिकारों से वंचित किया जाता रहा है जो अधिकार अन्य हिन्दू लोगों को समाज का अंग होने के नाते प्राप्त हैं। स्वाधीन भारत मे अनुसूचित जातियों की समस्त निर्योग्यताओं को वैधानिक तौर पर समाप्त कर दिया गया है और उन्हें अन्य नागरिकों की भांति समस्त अधिकार प्रदान किए गए हैं। इन लोगों के शैक्षणिक तथा आर्थिक उत्थान की दृष्टि से और सामाजिक निर्योग्यताओं को दूर करने के लिए संविधान में अनेक संरक्षण प्रदान किए गए हैं। अतः अब ऐसा लगने लगा है कि इन लोगों की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ रहा है। इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता है कि वैधानिक तौर पर हरिजनों को सब निर्योग्यताएँ दूर हो गई हैं, लेकिन व्यावहारिक तौर पर स्थिति पर्याप्त भिन्न है।

अनुसूचित जातियों की समस्याएं- अनुसूचित जातियों के लोगों को एक ओर सामाजिक जीवन में अनेक बाधाओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है और दूसरी ओर आर्थिक विषमता का सामना करना पड़ रहा है जिसके परिणामस्वरूप, अशिक्षा, गन्दगी, निर्धनता, जीवन का निम्न स्तर आदि अनेंक समस्याएँ उत्पन्न होती गई। इस प्रकार धार्मिक व राजनैतिक निर्योग्यताओं से अनुसूचित जाति के लोग सीधे रूप से प्रभावित नहीं है वरन् आर्थिक तथा सामाजिक निर्योग्यताओं का इन लोगों पर दयनीय प्रभाव पड़ रहा है। अतः यह कहना कठिन है

कि, ''तथाकथित अनुसूचित जाति के लोगों की समस्या मुख्य रूप से सामाजिक व आर्थिक है, न कि धार्मिक व राजनैतिक।''

भारतीय लोकतंत्र का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य कमजोर वर्गो को संरक्षण देना है। इसलिए अनुसूचित जातियों के लिए विभिन्न कल्याण कार्यक्रम चलाए गए हैं।

अनुसूचित जाति कल्याण कार्यक्रम

अनुसूचित जातियों का निर्धारण संविधान के अनुच्छेद 341 के अनुसार किया गया है।

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति तथा जनजाति आयोग

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आयोग में राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाने वाले अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के साथ पाँच सदस्य नियुक्त किए जाते हैं। आयोग के ये कर्तव्य है - (१.) संविधान अथवा किसी अन्य कानून के तहत अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लोगों को सुरक्षा सम्बन्धी सभी मामलो में जाँच तथा निगरानी (२.) अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लोगों को उनके अधिकारों तथा सुरक्षा के उपायों से वंचित किए जाने की विशिष्ट शिकायतों की जांच (३.) इन लोगों के सामाजिक और आर्थिक विकास की योजनाएं बनाने में सहयोग तथा सलाह देना और केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा इन योजनाओं के कार्यान्वयन में हो रही प्रगति का मूल्यांकन, (४.) राष्ट्रपति को वार्षिक और जब भी आयोग ठीक समझे, उस समय इन एहतियातों के कार्यान्वयन के बारे में रिपोर्ट भेजना (अ) अनुसूचित जातियाँ और जनजातियों के संरक्षण, कल्याण और सामाजिक -आर्थिक विकास के विभिन्न उपायों और इस सम्बन्ध में केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा क्या उपाय किए जाएं इस बारे में रिपोर्ट तथा परामर्श देना, और (५.) अनुसूचित जातियों और जनजातियों के संरक्षण, कल्याण, विकास और प्रगति के ऐसे अन्य सभी कार्य करना, जिनकी जिम्मेदारी संसद में बने किसी कानून या नियम के तहत राष्ट्रपति ने आयोग को सौंपी हो। केन्द्र और राज्य सरकारें अनुसूचित जातियों और जनजातियों से सम्बन्धित सभी प्रमुख नीतिगत मामलों के बारे में आयोग से परामर्श करेंगी।

स्वयंसेवी संगठन- अनेक स्वयंसेवी संगठन भी अनुसूचित जातियों और जनजातियों के कल्याण को बढ़ावा देने में लगे हैं। अखिल भारतीय स्तर के प्रमुख संगठनों में हरिजन सेवक संघ, दिल्ली; भारतीय रेडक्रास सोसाइटी, नई दिल्ली ' रामकृष्ण मिशन, नरेन्द्रपुर ; भारतीय आदिम जाति सेवक संघ नई दिल्ली, रामकृष्ण मिशन, पुरी, सिलचर, और पुरुलिया और भारतीय समाज उन्नति मण्डल, भिवंडीच तथा सर्वेंट्स आफ इण्डिया सोसाइटी, पुणे शामिल है। सरकार अनुसूचित जातियों के काम करने वाले स्थानीय स्तर के स्वयंसेवी संगठनों को अनुदान सहायता भी उपलब्ध कराती है।

छुआछूत के खिलाफ कानून- छुआछूत की कुप्रथा को रोकने के लिए 1955 में बने कानून के दायरे को बढ़ाया गया है और इसके दण्डात्मक प्रावधानों को और कड़ा कर दिया गया है। इसे लिए कानून में व्यापक संशोधन किए गए है और इसे नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 नाम दिया गया है। संशोधित अधिनियम 19 नवम्बर, 1976 से लागू हो गया है। इस कानून में छुआछूत की वजह से किसी को भी दण्ड देने की व्यवस्था है। बार-बार इस तरह का अपराध करने वालों को और कड़ी सजा/जुर्माने का प्रावधान किया गया है।

नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955 राज्य सरकारों के द्वारा लागू किया जाता है। अधिनियम को लागू करने के लिए राज्यों को कुल खर्च के 50 प्रतिशत के बराबर और केन्द्र शासित प्रदेशों को शत-प्रतिशत अनुदान सहायता दी जाती है। आन्ध्रप्रदेश, बिहार कर्नाटक, मध्य प्रदेश, राजस्थान और तमिलनाडु के छुआछूत की कुप्रथा वाले जिलों में इस तरह के मामलो को तेजी से निपटाने के लिए 36 विशेष न्यायालय/विशेष चलती-

फिरती अदालतें गठित की गई हैं। राज्यों को अधिनियम के प्रावधानों को कारगर तरीके से लागू करने के लिए समय पर आवश्यक दिशा-निर्देश और हिदायतें दी जाती हैं।

अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों पर अत्याचारों की रोकथाम- अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989, 30 जनवरी, 1990 से लागू हुआ। इसमें अत्याचार की श्रेणी में आने वाले अपराधों के उल्लेख के साथ-साथ उनके लिए कड़े दण्ड की व्यवस्था की गई है। वर्ष 1995 में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के अन्तर्गत व्यापक नियम भी बनाए गए, जिनमें अन्य बातों के अतिरिक्त प्रभावित लोगों के लिए राहत और पुनर्वास की भी व्यवस्था है। राज्यों में कहा गया है कि वे इस तरह के अत्चयाचारों की रोकथाम के उपाय करें और पीड़ितों के आर्थिक तथा सामाजिक पुनर्वास की व्यवस्था करें। अरूणाचल प्रदेश और नागालैंड को छोड़कर अन्य सभी राज्यों तथा केन्द्रशासित प्रदेशों में इस तरह केमामलों में इस कानून के तहत मुकदमा चलाने के लिए विशेष अदालतें बनाई गई हैं। अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लोगों पर अत्याचारों की रोकथाम के कानून के तहत आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात , तमिलनाडु और कर्नाटक में विशेष अदालते गठित की जा चुकी हैं।

केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना के अन्तर्गत इस कानून को लागू करने पर आने वाले खर्च का आधा राज्य सरकारें और आधा केन्द्र सरकार वहन करेंगी। केन्द्र शासित प्रदेशों को इसके लिए शत-प्रतिशत केन्द्रीय सहायता दी जाती है।

विशेष केन्द्रीय सहायता- अनुसूचित जातियों में गरीबी के उन्मूलन की यह केन्द्रीय योजना सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय की सबसे महत्वपूर्ण योजना है। विशेष केन्द्रीय सहायता के अन्तर्गत राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों को उनके इस तरह के कार्यक्रमों के लिए शत-प्रतिशत सहायता दी जाती है। इस योजना का मूल उद्देश्य अनूसूचित जातियों के लोगों के विकास कार्यक्रमों को बढ़ावा देना हैं इसके तहत परिवार-आधारित कार्यक्रमों की कमजोरियों और संसाधनों से सम्बन्धित कमियों को दूर करके योजनाओं को अधिक उद्देश्यपूर्ण और कारगर बनाने की कोशिश की जाती है। वर्ष 1979-80 में जब यह योजना शुरू की गई, तब इसके लिए पांच करोड़ रूपये नाममात्र राशि का प्रावधान किया गया था। राज्य सरकरों और केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रशासनों से अपेक्षा की जाती है कि वे विभिन्न क्षेत्रों तथा अनुसूचित जातियों के आर्थिक विकास कार्यक्रमों को लागू करने वाली एजेंसियों को विशेष केन्द्रीय सहायता का आबंटन करें। इनकी सहायता के लिये कुछ अन्य कार्यक्रम भी चलाये गये जैसे-

- अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के लिए मैट्रिक के बाद छात्रवृत्ति
- राज्य अनुसूचित जाति विकास निगम
- बाबा साहेब डा0 अम्बेडकर फाण्डेशन
- राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी आयोग
- राष्ट्रीय अनु0जाति एवं जनजाति वित्तीय विकास निगम

अनुसूचित जनजातियाँ

भारत के विभिन्न प्रदेशों में ग्रामीण तथा नगरीय अंचलों से दूर जंगलों, पहाड़ियों, घाटियों, तराइयों आदि क्षेत्रों में आदिम अवस्था में रहने वाले लोगों को जनजाति, आदिवासी, वन्य जाति, आदिम जाति आदि विभिन्न नामों से

सम्बोधित किया जाता है। भारतीय संविधान में इन लोगों को अनुसचित जातियों के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

भारतीय जनजातियाँ सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि अनेंक प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से इनके विकास के एिल कारगर प्रयास चल रहे हैं और संविधान में इनके लिए कुछ विशेष व्यवस्थाएँ की गई है।

डा0 रिवर्स के अनुसार- ''जनजाति एक सरल समुदाय है जो कि एक निश्चित भू-भाग पर निवास करती है, एक ही भाषा बोलती है और समान कार्यो जैसे युद्ध आदि में संगठित होने की क्षमता रखती है।''

होवल के अनुसार- ''जनजाति एक सामाजिक समुदाय है, जो एक विशिष्ट भाषा बोलता है, जिसकी एक विशिष्ट संस्कृति होती है जो अपने समूह को दूसरे समूह से पृथक् करती है, जनजाति के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह राजनीतिक आधार पर संगठित हो।''

(1) विशेष केन्द्रीय सहायता-राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों के जनजातीय विकास के प्रयासों को बढ़ावा देने के लिए विशेष केन्द्रीय सहायता दी जाती है। यह सहायता मूलतः परिवार- आधारित आमदनी योजनाओं संगठन, मत्स्य बागवानी, लघु सिंचाई, मृदा सरंक्षण पशुपालन, वानिकी, शिक्षा, सहकारी संगठन, मत्स्य पालन, गा्रमीण तथा लघु उद्योग जैसे क्षेत्रों में और न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के लिए दी जाती है। वर्ष 2001-02 के दौरान इसके लिए राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों को 500.30 करोड़ रूपये जारी किए गए। संविधान के अनुच्छेद 275(1) के पहले उपबंध के अनुसार राज्य सरकारों को अनुसूचित जनजातियों के कल्याण को बढ़ावा देने वाली वित्तीय योजनाओं के लिए धन उपलब्ध कराने तथा जनजातीय इलाकों मं प्रशासन के स्तर को राज्य के अन्य क्षेत्रों के प्रशासन के स्तर पर लाने के लिए अनुदान सहायता दी जाती है। इसका कुछ हिस्सा जनजातीय छात्रों को ऊंची शिक्षा दिलाने के लिए आवासीय स्कूलों की स्थापना करने में खर्च किया जाता है।

(2) आदिम जनजाति समूहों के लिए योजना- टेक्नोलाजी के कृषि- पूर्व स्तर, साक्षरता में कमी और घटती या स्थिर जनसंख्या के आधार पर 15 राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों में 75 जनजातीय समूहों की पहचान कर उन्हें आदिम जनजाति समूह का दर्जा दिया गया है। वर्ष 1998-99 से इन समूहों के सर्वांगीण विकास के लिए एक नई केन्द्रीय क्षेत्र की योजना शुरू की गई है। इस योजना के अन्तर्गत, अन्य किसी योजना द्वारा जो परियोजना/गतिविधियाँ नहीं चलाई जा रही हैं, उन्हें शुरू करने के लिए समन्वित जनजातीय विकास परियोजनाओं, जनजातीय शोध संस्थानों और गैर-सरकारी संगठनों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाती है।

(3) जनजातीय शोध संस्थान- आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, गुजरात, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल उत्तर प्रदेश, मणिपुर और त्रिपुरा में 14 जनजातीय शोध संस्थान स्थापित किए गए हैं। यह शोध संस्थान राज्य सरकारों को योजना बनाने की जरूरी जानकारी उपलब्ध कराने, शोध तथा आकलन सम्बन्धी अध्ययन कराने, आँकड़े जमा करने, पारम्परिक कानूनों की सूची बनाने औार प्रशिक्षण, गोष्ठियाँ तथा कार्यशालाएँ आयोजित करने में लगे हुए हैं। इनमें से कुछ संस्थानों में संग्रहालय भी हैं, जहाँ जनजातीय वस्तुएँ प्रदर्शित की गई हैं।

(4) अनुसूचित जनजाति के बालक/बालिकाओं के छात्रावास- बालिकाओं के लिए छात्रावास कार्यक्रम तीसरी पंचवर्षीय योजना में शुरू किया गया था। इसका उद्देश्य शिक्षा प्राप्त कर रही जनजातीय बालिकाओं को आवास सुविधा उपलब्ध कराना था। इसके अन्तर्गत राज्यों को छात्रावासों की निर्माण लागत का 50 प्रतिशत और केन्द्र

शासित प्रदेशों का शत-प्रतिशत राशि केन्द्रीय सहायता के रूप में दी जाती है। लड़कियों के लिए छात्रावासों की योजना की तरह ही लड़कों के लिए भी वर्ष 1989-90 में योजना शुरू की गई।

(5) जनजातीय उप-योजना क्षेत्र में आश्रम विद्यालय- केन्द्र द्वारा प्रायोजित यह कार्यक्रम वर्ष 1990-91 में शुरू किया गया। इसके अन्तर्गत आश्रम पद्धति के विद्यालय खोलने के लिए राज्यों को 50 प्रतिशत और केन्द्र शासित प्रदेशों को शत्-प्रतिशत सहायता दी जाती है। वर्ष 1999-2000 के दौरान 106 आश्रम विद्यालयों के निर्माण के लिए 9.97 करोड़ रुपये जारी किए गए।

(6) जनजातीय क्षेत्रों में व्यावसायिक प्रशिक्षण- केन्द्रीय क्षेत्र की यह योजना 1992-93 में शुरू की गई। इसका उद्देश्य बेरोजगार जनजातीय युवाओं की कुशलता बढ़ाकर उन्हें रोजगार/स्वरोजगार के अवसर उपलबध् कराना था। इसके तहत व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र खोले जाते हैं।

(7) भारतीय जनजातीय सहकारी विपणन विकास परिसंघ (ट्राइसेम)- जनजातीय लोगों को व्यापरियों के शोषण से बचाने तथा उन्हें छिटपुट वन-उत्पादों और अपनी जरूरत से अधिक कृषि उपज के लाभप्रद मूल्य दिलाने के लिए सरकार ने 1987 में भारतीय जनजातीय सहकारी विपणन विकास परिसंघ (ट्राइफेड) का गठन किया था। यह परिसंघ एक राष्ट्र-स्तरीय सहकारी संस्था है। जो बहुराज्यीय सहकारी समिति अधिनियम (1984) के तहत कार्य करता है। इसकी अधिकृत शेयर पूँजी एक अरब रूपये है और इसकी चुकता पूंजी 100 करोड़ रूपये है। इसमें भारत सरकार का निवेश 99.75 कीरेंछ ये हैं ओर बाकी के 0.34 करोड़ रूपये अन्य अंशधारकों ने निवेश किए है।

(8) छुटपुट वन उत्पादों के लिए सहायता अनुदान कार्यक्रम- यह केन्द्रीय क्षेत्र योजना है। इसके अन्तर्गत राज्य जनजातीय विकास सहकारी निगमों, वन विकास निगमों और छिटपुट वन उत्पाद (व्यापार और विकास) परिसंघों को छिटपुट वन उत्पाद कार्यक्रम शुरू करने के लिए शत-प्रतिशत अनुदान दिया जाता हैं इस योजना के अन्तर्गत राज्य अनुदान राशि का उपयोग इन कार्यक्रमों में कर सकते हैं (i) जनजातीय विकास सहकारी निगमों, वन विकास निगमों और छिटपुट वन उत्पादन परिसंघों का शेयर पूँजी आधार मजबूत करने (ii) वैज्ञानिक तरीके के भण्डारण गृहों का निर्माण करने, (iii) छिटपुट वन उत्पादों की उपयोगिता बढ़ाने के लिए प्रसंस्करण उद्योग लगाने और (iv) अनुसंधान और विकास गतिविधियों में वर्ष 2001-02 में विभिन्न राज्य निगमों को इसके लिए 12.81 करोड रूपये जारी किए गए। इसके उद्देश्य मान्यता प्राप्त पाठ्यक्रमों सहित व्यवासायिक, तकनीकी, गैर-व्यवसायिक और गैर-तकनीकी पाठ्यक्रमों के अध्ययन के लिए उन्हें वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना था। यह कार्यक्रम राज्य सरकारों और केन्द्र शासित प्रदेश के प्रशासनों द्वारा लागू किया जाता है। उन्हें इसके लिए उनके वचनबद्ध दायित्व के अतिरिक्त शत-प्रतिशत वित्तीय सहायता दी जाती है।

(9) राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति वित्तीय विकास निगम- अप्रैल, 2001 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति वित्तीय विकास निगम का गठन करके एक सरकारी कम्पनी की तरह बनाया गया है। एन0.एस0टी0 एफ0 डी0सी0 पूर्णतया भारत सरकार के स्वामित्व वाली कम्पनी है, जिसकी प्राधिकृत शेयर पूँजी 500 करोड़ रूपये है। अनुसूचित जातियों के लिए आर्थिक रूप से व्यवहार्य परियोजनाओं को वित्तीय सहायता देने वाला यह प्रमुख संस्थान है। निगम प्रति इकाई 10 लाख रूपये तक की लागत वाली आय उत्पन्न करने वाली योजनाओं के लिए अनुसूचित जनजातियों को रियायती दर पर वित्तीय सहायता उपलब्ध कराता है, उनके कौशल का विकास करने वाले कार्यक्रमों के लिए अनुदान देता है और लक्ष्य समूहों द्वारा चलाई जा रही गतिविधियों के लिए आगे और पीछे संयोजन प्रदान करता है। अनुसूचित जनजाति के वे सदस्य जिनकी वार्षिक पारिवारिक आय गरीबी-रेखा आय सीमा की दुगुनी से अधिक नहीं है, वे कृषि तथा इससे जुड़े कार्यो, उत्पादन और सेवा क्षेत्र की गतिविधियों के लिए वित्तीय सहायता प्राप्त करने के पात्र हैं।

(10) अनुसूचित जातियों/जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गो का सरकारी नौकरियों में प्रतिनिधित्व- इन वर्गो को सरकारी नौकरियों में कुछ छूट और रियायतें दी गई है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं- (१.) अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लिए अधिकतम आयु की सीमा में पांच साल की छूट (२.) अन्य पिछड़े वर्गो के उम्मीदवारों को अधिकतम आयु सीमा में तीन साल की छूट (३.) अनुसूचित जातियों/जनजातियों के उम्मीदवारों को सीधी भर्ती के मामलें में, जहाँ जरूरी हो, वहाँ अनुभव सम्बन्धी योग्यता में छूट और (४.) अनुसूचित जातियों/जनजातियों के उम्मीदवारों को आवेदन-शुल्क के भुगतान से छूट। इसी तरह की कुछ रियायतें शारीरिक रूप से विकलांगों और भूतपूर्व सैनिकों को भी दी गई है।

आरक्षण आदेशों का क्रियान्वयन सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न मंत्रालयों/विभागों के अन्तर्गत प्रत्येक विभाग में अनुसूचित जाति/जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गो के लिए अलग से सम्पर्क अधिकारियों की नियुक्ति की गई है। भर्ती अधिकारियों की वार्षिक विवरण प्रस्तुत नहीं करने होते हैं, जिससे कि सरकार उनकी छानबीन कर सके।

आरक्षण की यह प्रणाली राष्ट्रीयकृत सार्वजनिक क्षेत्रों के बैंकों समेत सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में भी अपनाई जा रही है। राज्य सरकारों ने भी अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गो आदि के पदों में आरक्षण प्रदान किया है और राज्य सेवाओं में उनके प्रतिनिधित्व को बढ़ाने के उपाय किए है। किन्तु राज्य सरकार की सेवाएं पूर्णतया अपनी-अपनी राज्य सरकारों के अधीन आती हैं।

विशेष संघटक योजना

अनु0जाति/जनजाति का सर्वांगीण विकास हासिल करने तथा उन्हें गरीबी रेखा से ऊपर उठाने के उद्देश्य से सन् 1979 में एक विशेष संघटक योजना की अवधारणा को मूर्त रूप दिया गया था। इस योजना को इस प्रकार बनाया गया है, जिससे राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों और केन्द्रीय सरकार से उपलब्ध अनुदान को बेहतर तरीके से अनु0जाति/जनजाति की आबादी में चल रहे कल्याणकारी कार्यक्रमों में व्यय किया जाए।

इस समय 24 राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों में भारी तादाद में अनु0जाति की जनसंख्या निवास करती है, जहां यह विशेष संघटक योजना चल रही है। इस योजना के मुख्य कार्यो में अनु.जाति/जनजाति परिवारों की पहचान और उन्हें आर्थिक विकास योजनाओं को अपनाने के लिए प्रेरित करना सम्मिलित है। उन्हें कम ब्याज पर धन मुहैया कराना और सब्सिडी का लाभ देना जिससे वे छोटे-मोटे कार्य करके अपनी गरीबी दूर कर सकें।

कल्याण कार्यक्रम

अनुसूचित जनजाति के कल्याण, प्रगति एवं विकास को सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी केन्द्र व राज्य सरकारों की है। सरकार द्वारा इन वर्गो के विकास के लिए अनेक कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया जा रहा है जिसका व्यापक उद्देश्य समता पर आधारित लोकतान्त्रक समाज की स्थापना तथा इन वर्गो को समाज की मुख्य धारा में शामिल करके देश की प्रगति एंव विकास में इनकी भागीदारी सुनिश्चित करना है।

यद्यपि कि समाज के कमजोर वर्गो, गरीबों को शिक्षा, रोजगार, आवास चिकित्सा, पेयजल व सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध कराने के लिये अनेक गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं इनमें अनु0जातियों/जनजातियों के लिए विशेष प्रावधान किया गया हैं इसके अतिरिक्त इनके समग्र एवं बहुमुखी विकास को सुनिश्चित करने के लिए कुछ विशेष योजनाएं क्रियान्वित की जा रही है जो निम्नवत है-

अनु0जातियों में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों में उद्यमिता एवं स्वरोजगार को विशेष बल प्रदान करने के लिए ''विशेष केन्द्रीय सहायता योजना' को क्रियान्वयन वर्ष 1980 से किया जा रहा है इसके लिए आवश्यक वित्त यवस्था उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी अनु0जाति विकास निगम' की है।

अनु0जन जातियों के समग्र और व्यवस्थित विकास के लिए चैथी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत 'जनजातिया उपयोजना' का संचालन किया जा रहा है जिसका उद्देश्य अनु0जनजातियों के लिए कृषि, बागवानी, कुटीर उद्योगों, पशुपालन, वन विकास, लघु उद्योंगों को प्रोत्साहन देेकर उनके आर्थिक आय में वृद्धि सुनिश्चित करना है।

अनु0 जाति के लिए संचालित विशेष योजनाओ के वित्तीय सहायता उपलब्घ कराने तथा अनु0जातियों के लोगों में स्वरोजगार एवं उद्यमिता को प्रोत्साहन देने के लिए 'राष्ट्रीय अनु0जाति वित्त विकास निगम' की स्थान 1999 में की गयी। अनु0जाति की महिलाओं के लिए निगम द्वारा वर्ष 2003-04 में 'महिला समृद्धि योजना' नाम से एक नया कार्यक्रम आरम्भ किया गया। जिसमें प्रत्येक महिला लाभार्थी इकाई को 4 प्रतिशत की न्यूनतम ब्याज दर पर रूपये 25000 का ऋण उपलबध कराया जाता है।

अनु0जन जातियो के लिए 'राष्ट्रीय अनु0जनजाति वित्त विकास निगम' का गठन वर्ष 2001 में किया गया इसका उद्देश्य अनु0जन जातियों में कौशल विकास के लिए रियायती दर पर ऋण उपलब्घ कराना है। वर्ष 02-03 में निगम द्वारा आदिवासी महिला सशक्तिकरण योजना शुरू किया गया। इसके तहत इनमें अत्यन्त गरीब महिलाओं को स्वरोजगार हेतु 4 प्रतिशत की रियायती ब्याज दर पर रूपये 50 हजार तक ऋण उपलब्ध कराए जाते है।

आदिवासियों को साहूकारों एवं बिचैलियों के शोषण से बचाने और उनके द्वारा एकत्रित वन उत्पादों का उचित मूल्य दिलाने के लिए 'ट्राइबल कोआपरेटिव मार्केटिंग डेवलपमंट फेडरेशन आफ इण्डिया का गठन किया गया हैं

शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। यह प्रगति और विकास की कुंजी है। अतः शिक्षा के दरवाजे प्रत्येक व्यक्ति के लिये खुले और सर्वसुलभ हो इसके लिए आदिवासी क्षेत्रों में शैक्षणिक ढांचे के विकास के लिए 'एकलव्य आदर्श आवासीय' विद्यालयों की स्थापना की गयी है।

जनजातिय उप योजनाओं से सम्बन्धित क्षेत्रों में 'आश्रम विद्यालयों' की स्थापना योजना वर्ष 1991 से शुरू की गयी है। वर्ष 03-04 में 315 आश्रम विद्यालयों के निर्माण के लिए 6.47 करोड़ रूपये जारी किए गए। ऐसे जिले जहां बालिका एवं महिला साक्षरता दस प्रतिशत से कम है वहां आवासीय परिसरों की स्थापना योजना वर्ष 93-94 से शुरू की गयी जिसके लिए वर्ष 03-04 में 5.73 करोड़ रूपये जारी किए गए।

13.4 सारांश (Summary)

समाज कार्य समाज के विभिन्न वर्गों के लिये कल्याणकारी सेवाएं प्रदान करता है। समाज कार्य की दृष्टि में पिछडे वर्ग, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति भी कल्याण कार्य करने के महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं इसके लिये समाज कार्य संस्थाओं के द्वारा पिछडे वर्ग, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति कल्याण से सम्बन्धित विशिष्ट प्रकार की सेवाओं का संचालन किया जाता है तथा उनके शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक कल्याण के लिये कार्य किया जाता है। समाज कार्य के द्वारा पिछडे वर्ग, अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिये रोजगार सम्बन्धित, शिक्षा एवं स्वास्थ्य तथा शारीरिक विकास सम्बन्धित कार्यक्रमों का संचालन किया जाता है तथा

आर्थिक सुरक्षा, मानसिक एवं शारीरिक सुरक्षा से सम्बन्धित कार्यक्रमों के माध्यम से सामान्य एवं विशिष्ट की पूर्ति की जाती है।

13.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Question for Practice)

1. पिछडे वर्गों से क्या आशय है? इनकी प्रमुख समस्याओं को उल्लेख कीजिये।
2. अनुसूचित जाति का अर्थ बताइये। इनके कल्याणार्थ चलाए जा रहे कार्यक्रमों के बारे में बताइये।
3. अनुसूचित जनजाति के कल्याण में सामाजिक कार्य –कर्ता की भूमिका पर प्रकाश डालिए |

४. पिछडे वर्गों के कल्याण के कार्यक्रमों का वर्णन कीजिये |

५. आर्थिक रूप से असक्षम व्यक्तियों के कल्याण में समाज कार्य कर्ता की भूमिका पर प्रकाश डालिए |

13.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

1. अहमद रफीउद्दीन मिर्जा, समाज कार्य दर्शन एवं प्रणालियां, शाइनिंग प्रेस लखनऊ, 2004
2. सिंह, सुरेन्द्र, पी.डी. मिश्र, समाज कार्य: इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियां, न्यू रायल बुक कम्पनी लखनऊ, 2010
3. मदन जी0 आर. , अमित अग्रवाल, परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन दिल्ली, 2012
4. द्विवेदी राकेश, समाज कार्य व्यावसाय: विकास एवं चुनौतियां, न्यू रायल बुक कम्पनी लखनऊ, 2007
5. सिंह मंजीत, व्यावसायिक समाज कार्य का आविर्भाव, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008